ISSN: 0971-8478

मार्च 2023 ₹ 22

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक



आधुनिकता में मौलिक स्त्री



योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अँग्रेज़ी, उर्दू व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अँग्रेज़ी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

घर पर हमारी पत्रिकाएँ मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है-
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल		बाल भारती	
वर्ष	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ
1	₹ 230	₹ 434	₹ 160	₹ 364

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑर्डर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजें। भेजने का पता है-
संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003

अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com

हमसे संपर्क करें- **फोन : 011-24367453** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद सदस्यता शुरू होने में कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1 वर्ष के प्लान के तहत ..... पत्रिका ..... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) .....

पता : .....

..... ज़िला ..... पिन .....

ईमेल ..... मोबाइल नं. .....

डीडी/पीओ/एमओ सं. ..... दिनांक ..... सदस्यता सं. .....

इस अंक में

आधुनिकता में मौलिक स्त्री

भारतीय स्त्रीवादी चिन्तन का परिप्रेक्ष्य : **सुधा सिंह** 8

स्त्री-विमर्श की जीवंत दास्तान : **चैताली सिन्हा** 13

'समथिंग ओरिजिनल': क़ुर्रतुल ऐन हैदर... : **रेखा सेठी** 17

उपन्यास अंश

हेति : सुकन्या अकथ कथा : **सिनीवाली** 23

कहानी

मंच : **दीपक शर्मा** 31

करतब-करिया : **सुमन गुर्जर** 35

फ़ेयरवेल के बाद : **श्रद्धा श्रीवास्तव** 46

एक दुनिया संवेदनाओं की : **विनीता बाडमेरा** 51

स्वीटी की अम्मा : **अनामिका अनु** 61

आज़ादी का अमृत महोत्सव

हम आज़ादी की मतवाली हैं : **रविचन्द्र गुप्ता** 78

इस माह-75 वर्ष पूर्व

मेरे गुरु, मेरे नेता, मेरे पिता : **सरोजिनी नायडू** 82

कविताएँ/ग़ज़लें

नौ कविताएँ : **सुशीला पुरी** 64

तीन कविताएँ : **विशाखा मुलमुले** 66

दो कविताएँ : **अनामिका चक्रवर्ती** 68

दो कविताएँ : **पल्लवी मुखर्जी** 70

कविता : **निवेदिता झा** 71

कविता : **वंदना गुप्ता** 72

दो ग़ज़लें : **रश्मि गुप्ता** 73

तीन कविताएँ : **प्रिया वर्मा** 74

कविता : **दिशा जगूड़ी** 76

पत्रिका आजकल

चेतना को प्रखर करती पत्रिकाएँ : **राकेश कुमार सिंह** 86

मूल्यांकन

पानी के लिए चिन्तित जलतरंग नाद : **नीलम कुलश्रेष्ठ** 93

ख़ूबसूरत बिम्बों से सजी कहानियाँ : **स्मिता सिन्हा** 97

नैसर्गिक गुणों का उद्घाटन : **भावना शेखर** 101

आधुनिक भारत की जीवन दर्शाती कहानियाँ : **कुमारी उर्वशी** 104

पुस्तक परिचय

साहित्य के नामवर : **शुभ्रा सिंह** 109

ISSN-0971-8478

पृष्ठ 112

आजकल स्थापित 1945

वर्ष : 78, अंक : 11
पूर्णांक : 932
मार्च, 2023
फाल्गुन-चैत्र : 1944

सम्पादक
फरहत परवीन

सम्पादन सहयोग
शुभ्रा सिंह

आवरण चित्र : **अनीता कुमारी**
आवरण सज्जा : **बिन्दु वर्मा**
रेखाचित्र : **अनुभूति गुप्ता**

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार
सम्पादक
आजकल
प्रकाशन विभाग
कमरा नं. 601डी, सूचना भवन
सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003
दूरभाष : 011-24362915
ई-मेल : ajkalhindi@gmail.com
website : www.publicationsdivision.nic.in
फेसबुक : www.facebook.com/publicationsdivision
ट्विटर : @DPD_India
इंस्टाग्राम : @dpd_india

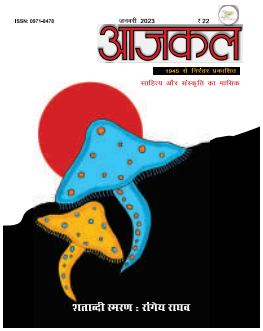
संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.के.सी. हृदयनाथ

सदस्यता शुल्क :
वार्षिक : 230 रुपये
(सामान्य डाक से)
434 रुपये
(रजिस्टर्ड डाक से)

पत्रिका न मिलने की शिकायत अथवा **आजकल** की सदस्यता लेने या पुराने अंक मँगाने के लिए pdjucir@gmail.com पर ईमेल करें या सम्पर्क करें-
दूरभाष : 011-24367453

सदस्यता सम्बन्धी पत्राचार का पता
अभिषेक चतुर्वेदी, सम्पादक (प्रसार),
पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग,
कमरा नं. 779, सूचना भवन,
सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110003

हमारे विक्रय केन्द्र : नई दिल्ली : सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260, **लखनऊ :** हॉल नं.1, दूसरी मंजिल, केन्द्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455, **कोलकाता :** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, दूरभाष : 33-22488030, **पटना :** बिहार : रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, दूरभाष : 0612-2683407, **मुम्बई :** 701 बी-विंग, सातवीं मंजिल, केन्द्रीय सदन बेलापुर, नवीं मुम्बई, दूरभाष : 9522-27570686, **बंगलुरु :** एफ़ विंग, केन्द्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 080-25537244, **अहमदाबाद :** 4-सी, नेपच्यून टॉवर (एच.पी. पेट्रोल पम्प के निकट), नेहरू ब्रिज कॉर्नर, आश्रम रोड, दूरभाष : 079-26588669, **हैदराबाद :** कमरा नं. 204, द्वितीय तल, सी.जी.ओ. टॉवर्स, कावादिगुडा-500080, **चेन्नई :** राजाजी भवन, एनी बेसेन्ट नगर, दूरभाष : 044-24917673, **तिरुअनन्तपुरम :** गवर्मेंट प्रेस के निकट, दूरभाष : 041-2330650



संग्रहणीय अंक

जनवरी 2023 अंक पूरा पढ़ गया। 'प्रसंगवश' बहुत अच्छा लगा। इसमें 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम और स्वतन्त्रता प्राप्ति के आंदोलन के दौरान प्रतिबन्धित पत्र-पत्रिकाओं पर जानकारी ज्ञानवर्धक है।

यह अंक हिन्दी के वरिष्ठतम साहित्यकार रांगेय राघव पर केन्द्रित है जिनका यह जन्म-शताब्दी वर्ष है। उनका जन्म 17 जनवरी, 1923 को हुआ था। रांगेय राघव का पूरा नाम 'तिरुमल्लै नंबाकम वीर राघव आचार्य' था।

इस अंक में रांगेय राघव के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अनेक विद्वानों–सुरेश सलिल, महेश दर्पण, सुलोचना रांगेय राघव (रांगेय राघव की पत्नी) और धर्मेंद्र प्रताप सिंह ने विस्तृत प्रकाश डाला है।

रांगेय राघव के पिता तमिल, फ़ारसी और संस्कृत के विद्वान थे। माता-पिता का रांगेय राघव के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। सन् 1937 में हिन्दी में एम.ए. करने के पश्चात 'गोरखनाथ और उनका युग' विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन करके बहुत ही अल्पायु में साहित्य जगत में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, आलोचना, इतिहास, दर्शन आदि पर विपुल मात्रा में सृजन किया। विपुल मात्रा एवं गुणवत्तायुक्त साहित्य सृजन के बावजूद उन्हें उचित सम्मान नहीं मिला परन्तु उनका श्रेष्ठ साहित्य आज भी ज़िन्दा है और रहेगा। हमें उनका साहित्य विश्वास दिलाता है कि मनुष्यता कभी पराजित नहीं होती है, वह अजेय है।

अंक की कविताएँ और कहानियाँ उत्कृष्ट हैं। 'मूल्यांकन' के अंतर्गत सभी पुस्तकों की समीक्षाएँ समीचीन हैं। कुल मिलाकर यह अंक रोचक, ज्ञानवर्धक, पठनीय और संग्रहणीय है।

–रमेश चन्द्र शुक्ल
ज़िला उन्नाव (उत्तर प्रदेश)

अतुलनीय 'प्रसंगवश'

जनवरी, 2023 अंक पढ़ा। सुप्रसिद्ध लेखक रांगेय राघव के संघर्षमय जीवन एवं साहित्य पर आधारित ये 'शताब्दी स्मरण' काफ़ी पसन्द आया। सुरेश सलिल, महेश दर्पण एवं धर्मेन्द्र प्रताप सिंह ने रांगेय राघव के साहित्य का मूल्यांकन विस्तार से दिलचस्प अंदाज़ में किया है। आपने सुलोचना रांगेय राघव के संस्मरण तथा सीमन्तिनी राघव द्वारा 'पिता को याद करते हुए' प्रकाशित करके इस स्मरण के महत्व को और भी बढ़ा दिया है।

इस अंक का 'प्रसंगवश' अत्यंत खूबसूरत एवं अतुलनीय है। आपने 1857 में अपने तन-मन-धन की क़ुर्बानी देने वाले कुछ ऐसे वीर शहीदों और साहित्यकारों को भावभीनी तथा मार्मिक श्रद्धां जलि पेश की है जो गुमनाम तो नहीं लेकिन उतने विख्यात भी नहीं, जैसाकि उनका हक़ बनता है। आपने जितने खुले दिल से और भावुक अंदाज़ में अज़ीमुल्ला ख़ाँ की कविता 'प्यामे आज़ादी' का विश्लेषण एवं मिर्ज़ा बाक़र के इसी नाम के अख़बार और उनके बलिदान की चर्चा की है, वह सराहनीय है। यातनाएँ और मुसीबतें सहकर भी आज़ादी की मशाल रौशन करने वाले अन्य कवियों को भी आपने बहुत संवेदनशील तरीक़े से पेश किया है।

–निशात असलम
दिल्ली

नए तेवर की छन्दमुक्त कविता

जनवरी 2023 अंक में 'प्रसंगवश' के तहत समय सन्दर्भित बातों को बहुत ही सलीके से सामने रखा गया है और निष्कर्ष के तौर पर ठीक ही कहा गया है कि साहित्य का काम अभी ख़त्म नहीं हुआ है क्योंकि हमें 1947 में राजनैतिक आज़ादी तो मिल गई लेकिन स्त्रियों सहित समाज के अनेक तत्त्वों को व्यवहारिक आज़ादी मिलना अभी बाक़ी है। और जब तक यह हो नहीं जाता, साहित्य का काम बचा रहेगा।

सिर्फ़ इस आज़ादी की बात ही हम क्यों करें? आज़ादी के साथ-साथ जब तक हम नैतिक स्तर पर, संस्कृति के स्तर पर, आदर्श की राह पर सजग नहीं हो जाते, हमारी संकीर्ण और विकृत मानसिकता ग़ुलामी की ओर ही भटकती रह जाएगी। 'आजकल' पत्रिका के प्रत्येक अंक में 'प्रसंगवश' के तहत इस तरह का सवाल उठाना, एक ज़रूरी हस्तक्षेप लगता है, जो साहित्य का मुख्य उद्देश्य भी है।

शताब्दी स्मरण करते हुए सुरेश सलील ने 'अल्प जीवन में महाजीवन' के तहत रांगेय राघव की काव्यात्मक संवेदना को बहुत ही सलीके से रेखांकित किया है।

इस बार की कविताओं के पन्नों पर बिल्कुल नए तेवर की छन्दमुक्त कविता में गोलेंद्र पटेल की कविताएँ और ग़ज़लों में ज्ञानप्रकाश विवेक की ग़ज़लें बड़ी असरदार हैं।

–सिद्धेश्वर प्रसाद
पटना (बिहार)

सुन्दर आवरण

जनवरी 2023 अंक बहुत ही सुन्दर व सुव्यवस्थित है। आवरण पृष्ठ सराहनीय है। पूरी पत्रिका में साहित्य और कला का सुन्दर समन्वय देखते ही बनता है। पत्रिका सदा की भाँति तथ्यपूर्ण, ज्ञानवर्धक एवं शोधपरक जानकारी से सराबोर है। एक उम्मीद भरे हुए पाठक को इस सोपान से बढ़कर और क्या चाहिए!

निःसंदेह यह अंक पठनीय और संग्रहणीय है। अंक की सभी रचनाएँ उच्च कोटि की हैं। यहाँ सभी रचनाकारों का उल्लेख करना मुश्किल है पर कुछ लोगों का नाम उद्धृत कर रहा हूँ। 'शताब्दी स्मरण' स्तम्भ की रचनाएँ स्मरणीय हैं। इसमें रांगेय राघव की महत्वपूर्ण अप्रकाशित कविताएँ पढ़ने को मिलीं। 'श्रद्धांजलि' स्तम्भ में ओम निश्चल की समीक्षा 'आलोचना में सच कहने का साहस', 'जन्मदिवस पर विशेष' स्तम्भ में कुमार मंगलम का लेख 'ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं में शहर' और 'मूल्यांकन' स्तम्भ में चन्द्रकला का समीक्षात्मक मूल्यांकन 'मानवीय संवेदनाओं का हस्तक्षेप' से गुज़रना सुखद रहा। अशोक वाजपेयी की कविताएँ हृदय को छू गईं। अशोक वाजपेयी लिखते हैं– 'उसने पानी माँगा/उसने अँधेरा चाहा/उसने रौशनी करने के लिए कहा--/उसने रेशा-रेशा इस तरह/समय को सहा।' अरुण शीतांश की कविताओं के बारे में क्या कहना! उनकी कविताएँ तो ज़िन्दगी का हिस्सा बन जाती हैं। वे कहते हैं 'हम शहर के नागरिक ज़रूर हैं/ शायद साहित्य के नागरिक नहीं हैं।'

–गोलेन्द्र पटेल
काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय (वाराणसी)

भूल सुधार

जनवरी, 2023 अंक के पृष्ठ 56 पर 'समय के बाहर सिर्फ़ पतझर है' पुस्तक के प्रकाशक लोकोदय प्रकाशन प्रा.लि., 769ए. किरन एन्कलेव, कुर्सी रोड, लखनऊ-226026 हैं। भूलवश उक्त अंक में अन्य प्रकाशक का नाम छप गया था।

प्रसंगवश

इस माह महिलाओं के गौरव और सम्मान को समर्पित अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस है। यह दिन प्रत्येक वर्ष लीसिसट्राय नामक उस महिला की याद दिलाता है जिसने प्राचीन ग्रीस (युनान) में फ्रेंच क्रान्ति के दौरान युद्ध समाप्ति की माँग करते हुए एक आंदोलन की शुरुआत की थी। यूरोप में स्त्री मुक्ति की लड़ाई में सीमोन द बुवा की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं। उन्होंने स्त्री पक्षधरता को अपने लेखन में प्राथमिकता दी। भारतीय परिप्रेक्ष्य में महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान ने स्त्री के शोषण और दमन को आधार बनाकर उसकी आज़ादी के लिए अपनी लेखनी द्वारा समय-समय पर आवाज़ उठाई। उन्होंने अपने शब्दों द्वारा स्त्रीत्व की गरिमा को ऊँचाई दी। 'माँ' के अस्तित्व को सर्वोपरि माना, पुत्र की अपेक्षा पुत्री को 'गोदी की शोभा' माना।

महिलाओं ने प्रत्येक काल में उतार-चढ़ाव देखे हैं। आज महिलाएँ चाँद पर भी पहुँच चुकी हैं लेकिन समाज में महिलाओं को लेकर अब भी कुछ हद तक विषमता है। शहरी और ग्रामीण महिलाओं के बीच भी ज़बरदस्त खाई है। शिक्षा और आर्थिक स्वतन्त्रता ने उसे स्वयं की पहचान दी है, फिर भी उसे अभी अपने को मज़बूत और दृढ़ रूप में स्थापित करने के लिए बहुत कुछ करना बाक़ी है। नारी की सम्मानजनक और सक्रिय स्थिति परिवार और समाज के साथ-साथ देश को भी विकास की ओर आमुख करेगी।

आज इक्कीसवीं सदी की स्त्री ने स्वयं को पहचान लिया है और कुछ हद तक अपने अधिकारों के लिए लड़ना भी सीख गई है किन्तु अभी भी इन स्त्रियों की संख्या काफ़ी कम है। अभी तक अधिकांश महिलाएँ अपने क़ानूनी अधिकारों से अनभिज्ञ हैं। ग्रामीण महिलाएँ आज भी बुनियादी सुविधाओं से कुछ हद तक वंचित हैं।

एक मनोरंजन प्रधान चैनल से बातचीत में एक प्रसिद्ध अभिनेत्री ने 'महिलाओं के बराबरी के हक़' पर बड़ा गहरा जवाब दिया था- उन्होंने कहा जनाब हम बराबरी की तो बात ही नहीं करते, हम और आप अर्थात एक महिला और एक पुरुष कहीं से भी बराबर नहीं हैं। जब प्रकृति ने ही उन्हें, अलग तरीक़े से रचा है तो हम बराबर क्यों बनें? हम तो बस इतना कह रहे हैं कि आप हमें हमारे अधिकारों से तो वंचित मत करिए! स्वतन्त्र निर्णय लेने का अधिकार, जीवन जीने का, विवाह, नौकरी आदि प्राथमिकताएँ चुनने का, एक महिला होने के अपने अधिकार को जताने का

अधिकार ; बस इतना। ना बराबरी ना अनदेखी। कहा जाता है कि एक सफल पुरुष के पीछे एक सशक्त स्त्री होती है, तो बस उस होने का स्वीकार हो, समयांतर पर श्रेय और श्रद्धेय दोनों ही प्राप्त होने लगेंगे।

इतिहास ही नहीं समकालीन समय में भी स्त्री अपने सशक्त और समर्थ भूमिका को बख़ूबी निभाती आ रही है। स्त्री और नदी यहाँ इस मायने में एक समान हैं कि यदि उनकी धारा रोकी-छेड़ी न जाए तो समृद्धि सदैव सहचरी होती है परन्तु ज़बरदस्ती बाँधने पर सिवाय विनाश और पछतावे के कुछ हाथ नहीं लगता।

आज महिलाएँ स्वावलम्बन ही क्यों, बल्कि सशक्तीकरण की अद्वितीय मिसाल हैं। अपने भारत देश में ही देखिए, खेल, रक्षा, शिक्षा, विज्ञान, राजनीति, औषधि कौन-सा ऐसा क्षेत्र होगा जहाँ महिलाओं ने अपनी पहुँच नहीं बनाई है? बेशक ये कुछ गिनती की या कहें कि इतने विशाल देश का बमुश्किल 5 या 10 प्रतिशत होंगी लेकिन ग़ौरतलब ये है कि वो परिदृश्य से नदारद नहीं हैं बल्कि अपनी उपस्थिति महसूस करवा रही हैं।

समुचित प्रशिक्षण और प्रोत्साहन से ये प्रतिशत निश्चित ही ऊर्ध्वगामी होने लगा है। कुछ और समय की बात है बस इनका संतंत्र सशक्त होने में और इनकी आवाज़ की धमक उन महिलाओं तक भी पहुँचेगी जिन्हें अपने महिला होने का अधिकार भी नहीं प्राप्त है। महिलाओं के सशक्तीकरण की सार्थकता तभी होगी जब उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा, शिक्षा की जोत घर-घर जलेगी, लिंग-भेद को दूर करना होगा, समाज की मानसिकता में पूर्णतः सकारात्मक बदलाव होगा।

एक श्लोक है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः' अर्थात जहाँ नारी की पूजा की जाती है, उसका सम्मान किया जाता है, वहाँ देवताओं का वास होता है पर इतना करने की भी आवश्यकता नहीं, एक छोटी-सी शुरुआत की जाए। केवल, उन्हें खुला अवसर दिया जाए कि वो अपने मंतव्य स्पष्ट रूप से निर्भय होकर रख सकें। वो जता सकें कि उन्हें क्या उचित लगता है और क्या कष्टप्रद, क्या सही लगता है और क्या फ़िज़ूल। इस छोटे-से प्रयास से बहुत-कुछ बदल जाएगा। पुनः सोने की चिड़िया तो नहीं पर भारत धरती पर स्वर्ग बनना शुरू हो जाएगा और ये शुरुआत सभी को मिलकर करनी होगी।

साहित्य समाज का दर्पण है। इसके द्वारा महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को समय-समय पर विभिन्न विधाओं द्वारा दर्शाया गया है। प्रस्तुत अंक में महिलाओं की दशा और दिशा के विभिन्न पक्षों को उठाने का एक प्रयास किया गया है।



सुधा सिंह

भारतीय स्त्रीवादी चिन्तन का परिप्रेक्ष्य

आधुनिक समय में दो महत्वपूर्ण परिघटनाएँ घटती हैं- एक नवजागरण और दूसरा राष्ट्रीय आंदोलन। नवजागरण की आधारभूमि पर राष्ट्रीय आंदोलन का ढाँचा खड़ा है। नवजागरण को जिस तरह से पुरुष रचनाकारों, समाज सुधारकों के यहाँ देखा गया, अगर आप उसे स्त्री सन्दर्भ से देखने का प्रयास करें तो उसका पूरा फलक बदल जाता है। नवजागरण में जितनी सुधार की आकांक्षाएँ थीं, वे लगभग स्त्री जीवन से ही जुड़ी हुई थीं, स्त्री की सामाजिक हैसियत, पारिवारिक सन्दर्भों और रीति-रिवाजों से जुड़ी हुई थीं। मोटे तौर पर देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि नवजागरण की सारी चिन्ता स्त्री-केन्द्रित चिन्ता है, लेकिन उसका मूल्यांकन कभी स्त्री के सन्दर्भ से नहीं किया गया। इस तरह से देखने पर नवजागरण का पुंसवादी चेहरा हमारे समक्ष प्रकट हो जाता है। नवजागरण की अगली कड़ी के रूप में राष्ट्रीय आंदोलन की भूमिका को देखने की ज़रूरत है।

भारतीय स्त्रीवाद का द्वन्द्व

ग़ौरतलब है कि भारतीय स्त्रीवाद को दो तरह के द्वन्द्वों से गुज़रना पड़ा है। ये द्वन्द्व क्या हैं? पहला द्वन्द्व तो यह था कि भारतीय स्त्रीवाद को सबसे पहले अपनी भारतीयता सिद्ध करनी थी। पश्चिमी स्त्रीवाद का पर्याय न समझ लेने की चुनौती ने उसे इतना आतंकित और तनावग्रस्त कर दिया कि भारतीय स्त्रीवाद की ऊर्जा इस बात में सर्वाधिक ख़र्च हुई कि उसकी भारतीयता किस प्रकार सिद्ध की जाए! हालाँकि स्त्री के प्रश्न हमेशा से देशकाल और सन्दर्भ के अंतर के साथ लगभग एक जैसे थे, बावजूद इसके भारतीय स्त्रीवाद के समक्ष चुनौती थी कि वह अपने को भारतीय पक्ष और सन्दर्भ से प्रस्तुत करे और उस पर पश्चिम की नक़ल होने का टैग न लग जाए। भारतीय स्त्रीवाद के सामने दूसरा तनाव था कि जिस तरह से राष्ट्रीय आंदोलन की निर्मिति की जा रही थी और राष्ट्रीय आंदोलन के बड़े बैनर के तहत स्त्री और हाशिये के समाज के प्रश्नों को पीछे ठेला जा रहा था, उस तनाव और संकट से भारतीय स्त्रीवाद स्वयं को बचाकर भारतीय स्त्रियों की समस्याओं को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उभारकर लाने में सफल हो।

सम्पर्क : ई-मेल : singhsudha.singh66@gmail.com

ऐसे में इस समय की लेखिकाओं ने राष्ट्र और नवजागरण, साहित्य और स्त्री के साथ उसके सम्बन्ध को जिस तरह देखा है अगर हम उसे दोबारा देखें और समझने का प्रयास करें तो एक नए तरह का पाठ तैयार होता दिखता है।

पहले अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि भारतीय स्त्री, भारतीय संस्कृति और भारतीय शिक्षा के ही अनुसार तैयार की जाए। संगठित आंदोलन द्वारा रखे गए पहले क़दम में भी 'स्त्री शिक्षा' एक महत्वपूर्ण प्रश्न था, साथ ही उसमें भारतीयता के चिह्नों को बचाए रखने का दबाव भी था। इस दबाव में भारतीय स्त्री की तनावग्रस्तता को भारतीय आंदोलन और संघर्षों की तनावग्रस्तता के साथ मिलाकर अच्छी तरह समझा जा सकता है।

नवजागरण 19वीं शताब्दी की परिघटना है और राष्ट्रीय जागरण का दौर भारतेन्दु युग से आरम्भ होता है। राष्ट्रीय जागरण में इस दौर की महिलाओं का सहयोग महत्वपूर्ण है। स्त्री के संघर्ष की कहानी कहे बिना राष्ट्रीय जागरण के इतिहास को लिखा ही नहीं जा सकता। राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे दौर में यानी सन् 1910 के बाद उस समय लिख रही महिलाओं के लेखन में स्पष्टता से स्त्री के नागरिक अधिकारों को चिह्नित किया गया है। राष्ट्रीय नवजागरण के सन्दर्भ में स्त्री के द्वारा किए संघर्ष, उसकी क़ुर्बानियों की याद के साथ-साथ स्त्री को नागरिक के रूप में चिह्नित करने के रूप में ज़ोर देना इस दौर के स्त्री-लेखन की विशिष्टता है।

राष्ट्र और आधुनिक राष्ट्र के साथ नागरिक सम्बन्ध का स्त्री के पक्ष से वैकल्पिक विवेचन तैयार करना आसान नहीं था। स्त्री को नागरिक के रूप में देखे बिना उसके अधिकारों पर बात ही नहीं की जा सकती। जब तक स्त्री को दया की अधिकारिणी मानते रहेंगे जैसाकि नवजागरण में हुआ और जो कुछ स्त्रियों को उस दौर में मिला, उसे उसके प्राप्य के रूप में नहीं बल्कि दया या मनुष्य मात्र समझे जाने के विवेक के आधार पर प्रदान किया गया जबकि वह उसका अधिकार था जिससे वह वंचित थी। इस बात को हम तभी समझ सकते हैं जब स्त्री को नागरिक के तौर पर देखने को महत्वपूर्ण मानना आरम्भ करें। यानी इस बिन्दु से आरम्भ करें कि स्त्री नागरिक है, तो बहुत सारे प्रवाद, बहुत सारी प्रवंचनाएँ अपने-आप छँट जाती हैं और स्त्री पितृसत्ता के फ्रेमवर्क से भी बाहर आती है। स्त्री को यदि केवल पारिवारिक सम्बन्धों (माँ, बहन, पत्नी, प्रेमिका या अन्य किसी रूप) में क़ैद करके देखते हैं तो इस तरह के सम्बन्ध अंततः उसे पितृसत्ता के खाँचे के भीतर धकेल देते हैं। इस खाँचे को तोड़कर बाहर आने का एक मात्र संगत और वैज्ञानिक तरीक़ा है, स्त्री को नागरिक के रूप में देखना। जहाँ वे पितृसत्ता के तमाम खाँचों को तोड़ते हुए एक नागरिक के अधिकार की बात करती हैं। नवजागरण की आरम्भिक बहसों की स्थिति यह है कि स्त्री को सम्बन्धों से स्वतन्त्र करके देखने की चेष्टा नहीं की गई।

इस क्रम में कुछ और बातें भी सामने आती हैं। राष्ट्र के निर्माण में स्त्री और पुरुष दोनों का समान सहयोग रहा है और यह केवल आधुनिक काल की विशेषता नहीं बल्कि आदिम काल से ही, जब सृष्टि का आरम्भ हुआ होगा तब से ही (भले ही वह सुदूर इतिहास बन गया) स्त्री के अस्तित्व के बिना समाज और राष्ट्र के निर्माण की परिकल्पना नहीं की जा

सकती। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध कवयित्री और भारतीय स्त्रीवादी चिन्तक महादेवी वर्मा कहती हैं कि आज जिस तरह से पुरुषों में यह भय है कि स्त्रियाँ यदि घर से बाहर निकलेंगी तो बहुत सारा विघटन परिवार, समाज, राजनीति और बाहरी दुनिया में घटित होगा, इस भय से पुरुषों को उबरना चाहिए। अगर आदिम समाज, आदिम संघर्ष काल में पुरुष अपने पार्श्व में खड़ी नारी की रूपरेखा प्रकृति में देख सका और तब भी जीवन के व्यवहारिक धरातल पर ठहरने में समर्थ हो सका तो निश्चय ही यह प्रवृत्ति (यानी स्त्रियों का घर से बाहर आना और साथ मिलकर काम करना) आज कोई ऐसा अपकार नहीं करेगी। शायद यह धारणा इतनी भारतीय रही कि जीवन में अनेक बार परीक्षित हो चुकी है। भारतीय स्त्रीवादी चिन्तन का ज़ोर इस बात पर रहा कि भारतीय स्त्री आरम्भ से ही सभ्यता के विकास के हर क़दम पर पुरुषों के साथ रही है, उसे सामाजिक पटल पर पीछे ठेलकर घर में क़ैद किया जाना स्वाभाविक नहीं है। स्त्री की मुक्ति और स्वतन्त्रता का प्रश्न घर की क़ैद से शुरू होता है।

भारतीय स्त्रीवादी चिन्तन के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि यह केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति का हिस्सा नहीं था बल्कि राजनैतिक और सांस्कृतिक चिन्तन की धाराएँ भी इसे प्रभावित कर रही थीं। राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय महिला नेत्रियों के विचार और सांस्कृतिक विवेचना, भारतीय स्त्रीवाद की चिन्तन प्रक्रिया को गति दे रहे थे। कभी उनके साथ तो कभी उनसे उलझते हुए भारतीय स्त्रीवादी चिन्तन की धारा बढ़ रही थी। यह देखना दिलचस्प होगा कि अखिल भारतीय महिला समिति में भारतीय स्त्रियों की स्थिति पर अध्यक्ष पद से बोलते हुए सरोजिनी नायडू स्वयं के लिए कहती हैं कि वे स्त्रीवादी नहीं हैं। ऐसा कहने के पीछे कारण था। स्त्रीवादी होने या कहने की पहली कसौटी है कि आप दमन और सामाजिक भेदभाव को स्वीकार करते हैं। कोई रचनाकार स्त्रीवादी है अथवा नहीं, यह परखने की पहली कसौटी है कि क्या वह दमन और सामाजिक भेदभाव की बात को स्वीकार करती या करता है अथवा नहीं? यदि वह दमन और सामाजिक भेदभाव की स्थिति को स्वीकार करता है तो इस तरह की घोषणाओं के बावजूद कि वह स्त्रीवादी नहीं है, वह स्त्रीवादी है। उस समय की महत्वपूर्ण राजनैतिक हस्ती सरोजिनी नायडू द्वारा स्वयं को स्त्रीवादी कहे जाने से परहेज़ किया जाना इसी कोटि में आता है। इस घोषणा के बावजूद कि वे स्त्रीवादी नहीं हैं, वे स्त्रियों के साथ हुए सामाजिक भेदभाव और ग़ैर-बराबरी के मुद्दों, स्त्री शिक्षा और स्त्रियों के नागरिक अधिकार के मुद्दों पर लगातार आंदोलन करती रहीं। लेखन में सरोजिनी नायडू द्वारा व्यक्त विचारों से बिल्कुल भिन्न, समसामयिक ज़रूरत के अनुकूल पुख़्ता तथ्यों के साथ महादेवी अपने विचार 'चाँद' पत्रिका के सम्पादकीय और अन्य लेखों में व्यक्त करती हैं।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि भारतीय स्त्रीवाद के समक्ष तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय महिलाओं के समक्ष ये चुनौती थी कि वे अपने को पश्चिम से अलग साबित करें साथ ही भारतीय परम्परा के अनुकूल साबित करें। इसका विस्तार कहीं-कहीं तो इतना ज़्यादा हो जाता है उस समय के आलेखों और टिप्पणियों में कि यह बहस 'भारतीय परम्परा बनाम हिन्दू परम्परा', 'भारतीय स्त्री बनाम हिन्दू स्त्री' की हो गई

है। हिन्दू नारी के जातीय गौरव की रक्षा की जनभावना के अनुकूल ही सरोजिनी नायडू दमन के किसी भी रूप की स्थिति को भारतीय नारी के जीवन में अस्वीकार करती हैं। 'फ़ेमिनिज़्म' को स्वीकार करने का अर्थ भारतीय नारी के जीवन में दमन की अवधारणा को स्वीकार क रना है। पूर्ववर्ती काल में भारतीय स्त्रियों का किसी प्रकार का दमन हुआ, यह स्वीकार करना पश्चिम की तुलना में भारतीय स्त्रियों की हेय स्थिति को प्रकट करेगा, अतः वे कहती हैं कि मैं फ़ेमिनिस्ट नहीं हूँ।

बीसवीं सदी के आरम्भ में हिन्दुस्तान के सार्वजनिक जीवन में दो बड़ी घटनाएँ घटती हैं। पहली, बड़ी संख्या में महिला संगठनों का प्रान्तीय और राष्ट्रीय स्तर पर गठन होता है तथा दूसरी बड़ी घटना, महिलाएँ राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में बड़ी संख्या में भागीदारी करती हैं लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि पुराने विचारों और पुनरुत्थानवादी चेतना से प्रभावित हो महिला संगठनों में होनेवाली बहसों और राजनीति में महिलाओं की भागीदारी की प्रक्रिया ने कोई अलहदा परिवर्तनकारी रूप ले लिया था। आरम्भिक मुद्दों और बहसों की सीमा अपने वर्तमान अधोपतन का विश्लेषण कर आगे बढ़ने का प्रयास करना था, साथ ही राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में स्त्रियों की भागीदारी का आह्वान करना था, लेकिन इन दोनों ही सद्प्रयासों की एक सीमा थी। वह यह कि हिन्दुस्तानी स्त्रियों की तत्कालीन दयनीय स्थिति पर विचार करते समय स्त्री का जो आदर्श रूप प्रस्तुत किया जा रहा था वह कुछ-कुछ 'विक्टोरियन युग की लेडी' और प्राचीन 'अभिजात्य हिन्दू' या 'अभिजात्य मुसलमान' स्त्री का था। इसका ज़ोर घरेलू आदर्श स्त्री, उसका परिवार, सम्मानजनक जीवन, उसकी हालत में सुधार के साथ-साथ रुढ़िवादी ईसाई नैतिकतापरक जीवनशैली और विचारों पर था। साथ ही इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि पश्चिम की संस्कृति को ग़ुलाम जनता की संस्कृति के लिए एक ख़तरे के रूप में देखा जा रहा था। अपनी संस्कृति को नष्ट होने से बचाने, उसे पुनर्व्याख्यायित करने का एक बृहत् दायित्व भी सामने था। इस क्रम में भारतीय स्त्री की एक ऐसी छवि पेश करनी थी जो अपने भारतीय होने में विशिष्ट दिखाई दे।

भारतीय हिन्दू समुदाय की तरह मुसलमान समुदाय में भी स्त्रियों की स्थिति की बेहतरी के लिए चिन्ता थी। मुसलमान स्त्रियों की सामाजिक बेहतरी के लिए हिन्दू स्त्रियों की तरह ही पहला एजेण्डा शिक्षा का रखा गया। साम्राज्यवादी शासकों के भारत में आने के पहले दिल्ली के मुसलमान शासकों का शासन भारत पर था। उनके सामंती और अभिजात्य परिवेश तथा जीवनशैली को अंग्रेज़ी सत्ता द्वारा अपदस्थ किया गया। साधारण मुसलमान जनता की स्थिति वही थी जो साधारण हिन्दू जनता की थी बल्कि बहुत-से हिन्दुओं ने सामाजिक जीवन में उन्नति की आशा में शासक वर्ग के धर्म को अपना लिया था। चली आती जीवनशैली को बहुत बड़ी चुनौती पाश्चात्य शिक्षा, अंग्रेज़ स्त्रियों की जीवनशैली, शिक्षा के स्तर, स्वतन्त्रता बोध आदि से मिल रही थी। सांस्कृतिक रूप से पश्चिमी संस्कृति से पिछड़ जाने का अनुभव भारतीय समाज—क्या हिन्दू क्या मुसलमान —में स्त्रियों की दशा को देखकर हो रहा था। इस स्थिति को बदलने के इरादे से 'अंजुमन-ए-ख़वातीन-ए-इस्लाम' का गठन 1 मार्च, 1914 को अलीगढ़ में अलीगढ़ गर्ल्स स्कूल के लिए

एक छात्रावास के निर्माण के अवसर पर आयोजित समारोह में हुआ। सर सैय्यद अहमद ख़ान के समय से अलीगढ़ मुसलमानों में नवजागृति का केन्द्र बन गया था। अंजुमन का मुख्य सरोकार भारतीय मुसलमान स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करना था। इस संगठन से शिक्षित अभिजात्य भारतीय मुसलमान परिवारों की स्त्रियाँ जुड़ी हुई थीं। भोपाल की बेगम ने इस सम्मेलन और संगठन में महत्वपूर्ण काम किया। बेगम ने मुसलमान स्त्रियों की शिक्षा की आवश्यकता पर यह कहते हुए ज़ोर दिया कि बिना शिक्षा के मुसलमान लड़कियाँ यह नहीं जान पाएँगी कि इस्लाम धर्म में उनको क्या अधिकार प्राप्त हैं और साथ ही उनकी अशिक्षा से समुदाय की प्रगति भी बाधित होगी। 'अंजुमन-ए-ख़वातीन-ए-इस्लाम' के गठन के मौक़े पर अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए बेगम ने कहा, "सारे समुदाय का विकास दाँव पर लगा हुआ है, अपने पुरुषों के सहयोग के बिना वे (मुसलमान स्त्रियाँ) कुछ नहीं कर सकतीं, लेकिन पुरुष भी बहुत कुछ नहीं कर सकते जब तक कि वे स्वयं स्त्रियों को शिक्षित करने का बीड़ा न उठा लें।"

इस प्रकार अंजुमन का उद्देश्य स्त्रियों के जीवन में परिवर्तन लाना था ताकि वे अपनी परम्पराओं की बेहतर वाहिका बन सकें। हिन्दू सुधारवादी नज़रिए का ज़ोर भी इसी बात पर था। परम्परा और भारतीय संस्कृति का पुरातन रूप उन्हें औपनिवेशिक दासता के ख़िलाफ़ पनपे राष्ट्रवाद से जोड़ रहा था। जिन स्त्रियों के बारे में चिन्ता की जा रही थी वे सामान्य स्त्रियाँ नहीं थीं, अभिजात्य, कुलीन, मध्यवर्गीय स्त्रियों के जीवन की यह दुर्दशा थी।

अंजुमन, सन् 1917 में गठित 'वीमेन इंडिया एसोसिएशन' और 'नेशनल काउंसिल ऑफ़ वीमेन इन इंडिया' (एनसीडब्ल्यूआई) की कार्रवाइयों में इस चिन्ता को देखा जा सकता है। 'वीमेन इंडिया एसोसिएशन' अखिल भारतीय स्तर पर महिलाओं को एकजुट करने का प्रथम प्रयास था। इसके संस्थापक सदस्यों में एनी बेसेन्ट, मार्गेरेट कज़िन और डोरोथी जीवराजदास शामिल थीं लेकिन इन सब संस्थाओं ने नई स्त्री के विकास का जो मॉडल रखा, वह 'पुरानी/परम्परित भारतीय स्त्री' के पदचिह्नों पर चलती हुई कुछ नए गुणों का समावेश कर बनी 'भारतीय महिला' का मॉडल था, जो 19वीं शती में निर्मित भारतीय महिला के मॉडल से बहुत भिन्न नहीं था। गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस, ख़िलाफ़त और क्रान्तिकारी दलों द्वारा आधुनिक भारतीय स्त्री का आदर्श प्रस्तुत किया जा रहा था। स्त्रियों की एक स्वतन्त्र आधुनिक पहलक़दमी चेतना के स्तर पर अभी अपेक्षित थी।

इन सब हलचलों की झलक उस समय के स्त्री-लेखन और चेतना में देखी जा सकती है। महिलाओं की पत्रिका 'स्त्री दर्पण' (1910-1929) की सम्पादिका रामेश्वरी नेहरू ने इंग्लैंड में एक महिला कॉलेज में व्याख्यान देते हुए यह बताया कि भारतीय महिलाओं और पश्चिम की महिलाओं के आंदोलन में अंतर है। इस तरह की व्याख्या का मुख्य कारण है कि स्त्री की एक सांस्कृतिक पहचान भारतीय स्तर पर निर्मित की जा रही थी जिसमें यह कोशिश थी कि यह पहचान ब्रिटिश उपनिवेशवादी मालिकों की सांस्कृतिक पहचान से अलग दिखाई दे। भारतीय स्त्रीवादी चिन्तन का यह प्रस्थान बिन्दु कहा जा सकता है। ❑



चैताली सिन्हा

माया एंजेलो
स्त्री-विमर्श की जीवंत दास्तान

'पिंजरे का पंछी गाता है कँपकँपाते स्वर में
उन अज्ञात चीज़ों के बारे में
जिनकी चाहत अभी बाक़ी है,
दूर पहाड़ी पर सुनाई देती है उसकी धुन
जब वह गाता है मुक्ति का गीत।'

एफ्रो-अमरीकन लेखिका, कवयित्री, नृत्यांगना, पटकथा एवं फ़िल्म निर्देशक, सामाजिक कार्यकर्ता और भी बहुत-सी प्रतिभाओं की धनी रहीं माया एंजेलो का जीवन बचपन से लेकर युवावस्था तक काँटों भरा रहा। अश्वेत वर्ण के कारण बचपन से ही बहुत दुःख और अपमान सहा था माया ने। एक तो अश्वेत ऊपर से स्त्री होना; इन दोनों पक्षों ने माया के जीवन का बहुत सारा समय दुखों की दहलीज़ के भीतर ही रखा। उनकी ज़िन्दगी में सूरज की पीली चमकीली किरणों ने बहुत संघर्षों के बाद दस्तक दी। माया ने दासता देखी और सही भी। ग़ुलाम होने की पीड़ा क्या होती है, इसे उन्होंने क़रीब से महसूस किया। इसीलिए माया एंजेलो ने लिखा, "मुझे मालूम है पिंजरे में बन्द चिड़िया क्यों गाती है...!" पिंजरे में बन्द पंछी की पीड़ा दासता में जकड़े अश्वेत समुदाय की पीड़ा है। उन तमाम असहाय ग़ुलामों की यातनाओं की कहानी है जिसे अश्वेत समाज ने सदियों तक झेला। रंगभेद, नस्लभेद और जातिभेद ये तीनों वो नासूर हैं, जिनका दंश सबसे ज़्यादा अमरीका में रहने वाले अफ्रीकीन अश्वेत समाज ने झेला। नस्लभेद की इन बेड़ियों से मुक्ति पाने के लिए अश्वेत-समाज ने लम्बा संघर्ष किया, आंदोलन किए, जुलूस निकाले। नागरिक अधिकार आंदोलन हुए, जिसके प्रणेता मार्टिन लूथर किंग जूनियर थे। आगे चलकर इस आंदोलन का हिस्सा बनीं माया एंजेलो।

माया एंजेलो की आत्मनिर्भरता उसकी आत्म-शक्ति का भी परिचय है। स्वत्व का बोध, अपनी अस्मिता का बोध स्त्री को सशक्त बनाता है। माया लिखती हैं

सम्पर्क : *ई-मेल : chaitalisinha44@gmail.com*

मुझे उन युवा लड़कियों को देखना पसन्द है जो घर से बाहर की दुनिया को अपनी मुट्ठी में कर लेती हैं। माया ने भी अपने बाहर की दुनिया को मुट्ठी में किया। कंडक्टर की नौकरी की, चकला चलाने से लेकर रात्रि क्लबों में जैज़ नृत्य किया। गाने गाए, भाषण दिए, अध्यापन कार्य किया। पटकथा से लेकर कविता, कहानी, आत्मकथाएँ एवं निबन्धों की रचना की। यहाँ तक कि भोजन बनाने की विधियों का भी उल्लेख किया, उन पर लिखा। जीवन में ऐसा कौन-सा कार्य था जिसे माया ने न किया हो! माया को तरह-तरह के व्यंजन बनाने का बहुत शौक था। यह गुण शायद माया में पिता से आया हो। पिता विवियन बक्सटर जॉनसन स्वयं भी एक अच्छे रसोइये थे। विवियन बक्सटर समुद्री जहाज़ में दरबानी एवं रसोई बनाने का काम करते थे। इसका उल्लेख माया ने अपनी आत्मकथा 'आई नो व्हाय द केज्ड बर्ड सिंग्स' में किया है। माया एंजेलो को अपने जीवन में जिसने सर्वाधिक प्रभावित किया वह थीं मॉमा (माया की दादी)। माया ने सबसे सशक्त और मज़बूत इरादों वाली स्त्री के रूप में देखा है अपनी दादी ऐनी हेंडरसन (मॉमा) को, जिन्होंने श्वेत-प्रभुओं के हर अत्याचार को बहुत संयम, सूझ-बूझ और समझदारी से सहा था। दादी जानती थीं कि गुलामी की बेड़ियों में जकड़े रहने की पीड़ा क्या होती है! छोटे-से स्टोर को चलाकर जीवन निर्वाह करना ही उनकी नीयति थी। इस स्टोर में कपास चुनने वाले मज़दूर से लेकर श्वेत-प्रभु तक आते थे। श्वेतों का आतंक ऐसा कि उनसे पैसे माँगना दण्डित होने के सामान था। वे चीज़ें ख़रीदते और बिना पैसे दिए ही चल देते। दादी को पैसे माँगने का साहस नहीं होता। नन्हीं माया और छोटा भाई बेली इन सारी घटनाओं को चुपचाप देखते। माया का मन कभी-कभी विद्रोह कर उठता। वह दादी पर खीझती भी कि आख़िर क्यों वह इतना डरती हैं, इन गोरे लोगों से। क्यों वह प्रतिवाद नहीं करतीं! प्रतिवाद करना क्या इतना आसान होता है गुलाम बने रहने के बाद। माया ने स्टंप्स में रहकर ग़रीबी, भूख, यातनाएँ, अपमान और न जाने जीवन के कितने रूप-रंग देखे। श्वेत-प्रभुओं का आतंक देखा। वैसे अमरीका में आज भी अश्वेतों का जीवन बहुत सुधरा नहीं है। आज भी काले होने के कारण उन्हें प्रताड़ित किया जाता है। जॉर्ज फ़्लॉयड की घटना हम जानते हैं। इस समुदाय ने सबसे अधिक सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक असमानता को झेला है। समाज में बराबरी का स्थान पाने के लिए रोज़ा पार्क्स से लेकर मार्टिन लूथर किंग जूनियर, मैल्कॉमएक्स और स्वयं माया ने भी निरन्तर संघर्ष किया। सन् 1960 में नागरिक अधिकार आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा और मार्टिन लूथर किंग के गम्भीर भाषण से अश्वेत समाज को बहुत बल मिला।

बचपन में यौन शोषण की शिकार हुई माया एंजेलो ने यौन घर्षण को स्त्री जाति का घोर उत्पीड़न कहा। वह मानती हैं कि यौन उत्पीड़न से न केवल स्त्री की देह का नुक़सान होता है वरन् उसकी आत्मा को भी चोट पहुँचती है। एक स्त्री होने के कारण माया ने लैंगिक भेद को भी झेला। इसीलिए माया के लेखन में यौनिकता, नस्लवाद, रंगभेद और स्त्री-चेतना के विविध रूप मिलते हैं। पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री-जीवन एवं उसकी दशा और दिशा

पर बेबाक होकर लिखती हैं माया एंजेलो। वह लिखती हैं-

'क्या तुम मुझे झुके सर और
नीची निगाहों के साथ
टूटा हुआ देखना चाहते हो
खुद के मार्मिक रुदन से कमज़ोर हो चुके
ढुलकते कन्धों के साथ मैं उठती हूँ
मैं ही ग़ुलामों का सपना और उम्मीद हूँ
मैं उड़ती हूँ
मैं उगती हूँ
मैं उठती हूँ।'

अपनी आरम्भिक जीवन-यात्रा के विषय में लिखते हुए माया कहती हैं कि उनके चरित्र की शक्ति और साहित्य के प्रति प्रेम के माध्यम से ही वह आगे बढ़ सकीं। माया ने अपने जीवन में जिन रचनाकारों से प्रेरणा ली उनमें पॉल लॉरेंस डनबर, विलियम शेक्सपियर, पो बटलर, थैकरे, हेनली और लंग्सटन ह्युजेज़ इत्यादि प्रमुख रहे।

माया एंजेलो की आत्मनिर्भरता और सृजनशक्ति का अनुमान उनकी सातवीं आत्मकथा 'आई नो व्हाई द केज्ड बर्ड सिंग्स' को पढ़ते हुए लगा सकते हैं। यह बन्द चिड़िया केवल माया एंजेलो के निजी जीवन की पीड़ा या गाथा नहीं सुनाती बल्कि समस्त संसार की स्त्रियों की यातनाओं और ग़ुलाम जीवन की कथा सुनाती है। माया एंजेलो की रचनाओं में जो तीक्ष्णता है, जो धार है, उसका कारण है उसका विस्तृत जीवन फलक और उसके कटु-तिक्त अनुभव। ग़ुलाम लड़की किस प्रकार नस्लवाद को झेलते हुए निरन्तर आगे बढ़ती गई, यह उन सभी शोषित, दमित और कुचलित स्त्री जाति के लिए एक मिसाल है। माया ने धीरे-धीरे सफलता की सभी ऊँचाइयों को छुआ, समाज में सम्मानित हुईं जबकि इसके पीछे का जीवन बहुत दुर्धर्ष और कठिन रहा माया के लिए। कम उम्र में ही विवाह से पूर्व माँ बनने के कारण माया ने जीवन में जो कष्ट भोगे, वह उसके मनोबल को तोड़ने के लिए काफ़ी थे। एक समय ऐसा भी आया जब उसे पेट पालने के लिए चकला तक चलाना पड़ा। पेट की आग सबसे बड़ी आग होती है।

सन् 1928 ई. में सेंट लुईस के मिसौरी में जन्मी माया ने गृहयुद्ध के बाद के समय में स्त्री अधिकारों की बात की। श्वेत-बहुल समाज में अपना क़द ऊँचा करते हुए निरन्तर आगे बढ़ती गईं। अश्वेत स्त्रियों के हक़ के लिए, लिखा बहुत लिखा। कविताओं के माध्यम से लोगों में चेतना जागृत कीं। 'रेनबो इन द क्लाउड्स' एवं 'ऑन द पल्स ऑफ़ मोर्निंग' जैसी कविताएँ बहुत कुछ कहती हैं। 'ऑन द पल्स ऑफ़ मोर्निंग' कविता को उनकी आत्मकथात्मक कविता कहा गया है। यह कविता अश्वेत समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सुरक्षा की ज़िम्मेदारी लेने की बात करती है। सन् 1993 में माया ने इस कविता को बिल क्लिंटन के प्रथम उद्घाटन समारोह में पढ़ा। यही कारण है कि एंजेलो की इस कविता को 1994 में 'बेस्ट स्पोकन वर्ड' श्रेणी में ग्रैमी अवार्ड से सम्मानित किया गया। विश्व कवि बनती माया की रचनात्मकता न केवल हाशिए के समाज को शक्ति प्रदान करती है बल्कि उन्हें दोबारा उठकर खड़े होने के लिए भी ललकारती है।

वह लिखती हैं –

आज चट्टान रोती है

तुम खड़े हो सकते हो मुझ पर-
लेकिन मेरे पीछे अपना चेहरा मत छिपाओ
पूरे विश्व की सीमा के पार एक नदी सुन्दर गीत गाती है –
कहती है
आओ मेरे पास विश्रांति के लिए
आओ शान्ति में समा जाओ
मैं गीत गाऊँगी
वह गीत जिसे सर्जक ने तब दिया था मुझे
जब मैं, वृक्ष और चट्टान सब एक थे।

उक्त कविता के अतिरिक्त माया एंजेलो ने यौन-शोषण और वेश्यावृत्ति पर 'फ़ेनोमेनल वूमन', 'वूमनवर्क' और 'सेवेन वूमंस ब्लेस्ड एस्योरेंस' जैसी स्त्री विषयक कविताओं की भी रचना की। लायन ब्लूम ने इन कविताओं पर टिप्पणी करते हुए कहा कि, "इनमें नस्लभेद, भेदभाव, शोषण की पीड़ा और अपने वर्ग के लिए शुभेच्छा है।"

अश्वेत होने के साथ-साथ स्त्री होना माया के लिए चुनौतीपूर्ण रहा, कारण कि अश्वेत रचनाकार हमेशा दोहरे दबाव से जूझता है। रंगभेद और निरन्तर मशीनी होते चले जा रहे भौतिकतावादी समाज के दबाव उसे खुलकर बोलने और लिखने की आज़ादी नहीं देते। इसीलिए ब्लैक बर्न ने कहा था कि अश्वेत स्त्रियाँ आत्मकथा लिखकर अपने जीवन को दोहरे जोखिम में डालती हैं। सच है! माया एंजेलो ने कविताओं और आत्मकथाओं को लिखकर एक प्रकार से जोखिम ही तो मोल लिया था।

मार्गरीटा उर्फ़ माया एंजेलो ने पाठकों को अमरीका में विद्यमान वर्ग एवं जातीय-व्यवस्था के सम्बन्ध में चैतन्य किया। यह बात तब की थी, जब उनके पिता ने उन्हें कैलिफ़ोर्निया के एक अन्य शहर में रहने के लिए बुलाया। वहाँ वह जान पाईं कि दूसरी तरह की सामाजिक व्यवस्था कैसी होती है।

माया ने अपने जीवन में बहुत-सी उपाधियाँ प्राप्त कीं। अनेक क्षेत्रों में काम किया, 'कैरो इंग्लिश न्यूज़ वीकली' में मुख्य सम्पादक की भूमिका भी निभाई, घाना विश्वविद्यालय के 'स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक एंड ड्रामा' में पढ़ाने का कार्य किया तो कभी 'द अफ्रीकन रिव्यू' में फ़िचर भी लिखे। माया ने 30 से अधिक मानद डॉक्टरेट की उपाधियाँ प्राप्त कीं। एक टिकट-चेकर के रूप में काम करने वाली माया प्रथम अश्वेत स्त्री थीं। माया ने स्नातक की उपाधि कैलीफ़ोर्निया के उच्च विद्यालय से प्राप्त की। इससे आगे वह नहीं पढ़ सकीं, कारण रहा सोलह वर्ष की अल्पायु में पुत्र गाई जॉनसन का जन्म होना और उसके बाद बढ़ते आर्थिक दबाव, पालन-पोषण की चिन्ता। आर्थिक स्वावलंबन की चिन्ता माया की मुख्य चिन्ता रही पुत्र के जन्म के बाद से परन्तु हार नहीं मानी। कह सकते हैं कि जीवन के इसी उतार-चढ़ाव ने माया को मज़बूती प्रदान की और इस अवैध संतान के जन्म का ही निष्कर्ष था 'आई नो व्हाई द केज्ड बर्ड सिंग्स'।

माया एंजेलो पर लिखने के लिए अनंत कहानियाँ हैं, अनंत सम्भावनाएँ हैं। इन सम्भावनाओं के तलाशे जाने की नितांत आवश्यकता महसूस की जानी चाहिए। ❑



रेखा सेठी

समथिंग ओरिजिनल
क़ुर्रतुल ऐन हैदर को याद करते हुए

क़ुर्रतुल ऐन हैदर भारतीय साहित्य की बड़ी ले खिका हैं। यह लेख अपनी अग्रजा के रूप में उनकी स्मृति को समर्पित है। वे 1941 से 1945 तक इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय की छात्रा रहीं। मैं भी 1984-89 तक यहाँ पढ़ी और अब यहीं अध्यापन कर रही हूँ। साहित्य के अध्ययन-अध्यापन से जुड़े होने के कारण लम्बे समय से मेरे मन में यह जिज्ञासा रही कि जिन लेखकों की विरासत भारतीय विरासत की थाती है, वे जब छात्रों की उम्र के रहे होंगे तब क्या सोचते थे? अपने आस-पास को समझने की क्या दृष्टि रही होगी? उनकी भाषा कैसी थी, आदि। पिछले दिनों कॉलेज के संग्रहालय में पुरानी पत्रिकाएँ देखते हुए मुझे उनका एक लेख मिला। इंद्रप्रस्थ कॉलेज एकमात्र ऐसा कॉलेज है जिसने अपनी विरासत को संग्रहालय के रूप में सहेज कर रखा है और उसे एक लर्निंग रिसोर्स सेंटर की शक्ल दी जिससे ऐसे अध्ययन हो सकें जो हमें हमारा इतिहास समझने और उसका विश्लेषण करने में मदद करें। 1944 की कॉलेज पत्रिका 'प्रदीप' में क़ुर्रतुल ऐन हैदर का अंग्रेज़ी में लिखा एक लेख मिलता है जिसका शीर्षक है 'समथिंग ओरिजिनल' यानी 'कुछ मौलिक'। इस लेख के साथ उनका नाम है और यह सूचना भी कि वे थर्ड ईयर (तृतीय वर्ष) की छात्रा हैं। यह लेख कहानीनुमा है, दो मित्रों के बीच संवाद जिसमें कुछ मौलिक रचने या लिखने के लिए मज़मून-ए-आफ़रीन ढूँढ़ा जा रहा है। यह लेख एक तरह का व्यंग्य है। उन दिनों लेखन में प्रगतिशीलता का ज़ोर था

सम्पर्क : *ई-मेल : reksethi@gmail.com*

लेकिन वहीं बहुत बार प्रगतिशीलता सिर्फ़ फ़ैशन बनकर रह जाती थी। इस कहानी में दो किरदार आपस में जो बातचीत करते हैं उसमें कहानी सुनाने वाली लेखिका का मित्र कहानी का जो आइडिया देता है, वह कहने को प्रगतिशील है लेकिन रूमानियत में उलझा हुआ है। कहानी उसी स्थिति पर एक तरह का व्यंग्य है। सम्भवतः यह उस समय की साहित्यिक विचारधारा पर भी एक तरह का व्यंग्य है जिसमें रोमानी ढर्रे पर पनपता स्त्री-पुरुष का प्रेम, हमारी साहित्यिक प्रगतिशीलता को रोमानी ढाँचे में बाँध रहा था। कॉलेज की पत्रिकाओं में छपने वाले ऐसे लेखों की ख़ास भूमिका होती थी। आज के समय के फ़ेसबुक पोस्ट या ब्लॉग की तरह ये छोटी-छोटी टिप्पणियाँ मज़ाहिया अंदाज़ में लिखी जाती थीं और अपने साथियों के बीच लेखक को लोकप्रिय बनाती थीं। क़ुर्रतुल ऐन हैदर ने बहुत कम उम्र में लिखना शुरू कर दिया था और सन् 1945 तक उनका पहला कहानी-संग्रह 'शीशे का घर' प्रकाशित हो चुका था।

इसी पत्रिका में उनकी एक उर्दू कहानी भी मिलती है जिसका शीर्षक है 'रेल में'। उसके आरम्भ में ही यह भी दर्ज है कि इसका प्रसारण 15 सितम्बर, 1942 की शाम ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ से हुआ। यह नहीं पता चल पाया कि इस कहानी का प्रकाशन कॉलेज पत्रिका के अतिरिक्त भी कहीं हुआ या नहीं? सम्भवतः नहीं क्योंकि उनके क हानी-संकलनों--शीशे के घर','सितारों से आगे','पतझड़ की आवाज़', 'रोशनी की रफ़्तार' में इस शीर्षक से कोई भी कहानी नहीं है। 'प्रदीप' पत्रिका में प्रकाशित यह कहानी ज़ाहिर करती है कि 15-16 साल की उम्र में क़ुर्रतुल ऐन हैदर लेखन और रेडियो में बराबर रूप से सक्रिय थीं। इस कहानी का केन्द्र-बिन्दु भी लखनऊ की पारम्परिक जीवन शैली जीने वाली पर्दानशीन नवाबज़ादियों तथा देश के अलग-अलग कॉलेजों में पढ़ने वाली आज़ाद-ख़याल लड़कियों के जीवन के अंतर को रेखांकित करना है।

1941-45 का समय पूरे देश में राजनैतिक सक्रियता का समय था। यह वह समय था जब गाँधीजी का 'भारत छोड़ो' आंदोलन परवान चढ़ रहा था। पूरे देश से युवक-युवतियाँ आगे बढ़कर उसमें भाग ले रहे थे। इंद्रप्रस्थ कॉलेज के सभी विद्यार्थियों में भी राजनैतिक चेतना की सरगर्मियाँ ज़ोर मार रही थीं। स्वतन्त्रता की अग्रदूत सुचेता कृपलानी सरीखी छात्राएँ इसी कॉलेज से निकली थीं। 1942 में इसी कॉलेज की छात्रा रूप सेठ ने लाहौर जेल की प्राचीर पर तिरंगा लहराया। उस समय की छात्राएँ बताती हैं कि किस तरह आए दिन लड़कियाँ गाँधीजी के आंदोलनों में भाग लेने के लिए कॉलेज की दीवारें फाँद-फाँद कर जुलूस और जलसों में शामिल होने के लिए निकल जाती थीं। चरख़ा चलाना, सूत कातना, खादी पहनना कॉलेज की छात्राओं का राष्ट्र धर्म बन गया था। 2005 में प्रकाशित मीना भार्गव तथा

कल्याणी दत्ता ने अपनी पुस्तक 'Women, Education and Politics : The Women's Movement and Delhi's Indraprastha College' में इन सारी स्थितियों का ब्योरा प्रस्तुत किया है। 1942 में ही इंद्रप्रस्थ कॉलेज की छात्राओं द्वारा स्वाधीनता आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेने के कारण औपनिवेशिक सरकार ने छात्राओं के दमन के लिए छात्रावास को मिलने वाली गेहूँ की आपूर्ति में कटौती कर दी। इस सबसे उनका उत्साह कम नहीं हुआ। क़ुर्रतुल ऐन हैदर इतिहास के इसी मोड़ पर कॉलेज के छात्रावास में रह रही थीं।

यह समय स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व का था। एक ओर आज़ादी का जुनून, दूसरी ओर लड़कियों की आज़ाद-ख़याली के अंतर्विरोध। पितृसत्तात्मक परिवारों से दूर शहर में कुछ लड़कियों ने अपनी आज़ादी को जीवन की रंगीनियों में पाने की कोशिश की। 'गुड गर्ल' बनाम 'बैड गर्ल' सिंड्रोम जो आज तक किसी-न-किसी रूप में बना हुआ है, उस समय भी कॉलेजों के छात्रावासों में नैतिकता के ये सवाल और मूल्यगत टकराहटें लगातार चलती रहती थीं। 1985 में क़ुर्रतुल ऐन हैदर को अपने कहानी-संकलन 'पतझड़ की आवाज़' के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला। इसी नाम से उनकी कहानी में इस स्थिति का बेबाक वर्णन है। इस कहानी से दो-तीन हिस्से उद्धृत हैं—

"ये विश्व युद्ध के दिन थे या शायद युद्ध इसी साल ख़त्म हुआ था, मुझे ठीक से याद नहीं है। बहरहाल, दिल्ली पर बहार आई हुई थी। करोड़पति कारोबारियों और भारत सरकार के बड़े-बड़े अफ़सरों की लड़कियाँ हिन्दू-सिख-मुसलमान... लम्बी-लम्बी मोटरों में उड़ी-उड़ी फिरतीं। नित-नई पार्टियाँ, उत्सव, हंगामे—आज इंद्रप्रस्थ कॉलेज में ड्रामा है, कल मिरांडा हाउस में, परसों लेडी इरविन कॉलेज में संगीत सभा है। लेडी हार्डिंग और सेंट स्टीफ़ेंस कॉलेज, चेम्सफ़ोर्ड क्लब, रोशनआरा, इंपीरियल, जिमख़ाना—मतलब यह कि हर ओर अलिफ़-लैला के बाल बिखरे पड़े थे, हर स्थान पर नौजवान फ़ौजी अफ़सरों और सिविल सर्विस के अविवाहित पदाधिकारियों के ठट डोलते दिखाई देते। एक हंगामा था।"

एक ही कहानी में अर्थ की कई परतें हैं। स्त्री शिक्षा का माहौल अनेक जटिलताएँ समेटे हुए था। कॉलेज और वहाँ के छात्रावास कुलीन घरानों की लड़कियों के लिए थे। उन्हीं में से बहुत-सी लड़कियाँ और आगे पढ़ीं और ऊँचे-ऊँचे ओहदों पर पहुँच गईं। इस कहानी में भी ऐसी सफलताओं का ज़िक्र है। कुछ बड़े अफ़सरों की शरीक़-ए-हयात हो गईं। कुछ सामाजिक-राजनैतिक क्षेत्रों में सक्रिय रहीं लेकिन उन सबके वर्णन से सामाजिक रिपोर्टें बनती हैं। कहानी उन भीतरी सच्चाइयों को उजागर करने से बनती है जिन्हें विक्टोरियन नैतिकता और पारिवारिक मर्यादा के नाम पर कई पर्दों

में छिपा कर रखा जाता है। क़ुर्रतुल ऐन हैदर इस कहानी में ऐसी महीन स्थितियों को बेपर्दा करती हैं—

"इन दिनों नई दिल्ली की एक-दो आवारा लड़कियों के क़िस्से बहुत मशहूर हो रहे थे और मैं सोच-सोचकर ही डरा करती थी। शरीफ़ ख़ानदानों की लड़कियाँ अपने माँ-बाप की आँखों में धूल झोंककर किस तरह लोगों के साथ रंगरेलियाँ मनाती हैं। हॉस्टल से प्रायः इस प्रकार की लड़कियों के सम्बन्ध में अटकलें लगाया करती। वे बहुत ही अजीब और रहस्यमयी हस्तियाँ मालूम होतीं। यद्यपि देखने में वे भी हमारी ही तरह की लड़कियाँ थीं—साड़ियाँ, सलवारें पहने बाक़ी सुन्दर और पढ़ी-लिखी।

"लोग बदनाम करते हैं जी", सईदा दिमाग़ पर बड़ा ज़ोर डालकर कहती, "अब ऐसा भी क्या है?"

"वास्तव में हमारी सोसाइटी ही अभी इस योग्य नहीं हुई कि पढ़ी-लिखी लड़कियों को अपने में समा सके," सरला कहती।

"होता यह है कि लड़कियाँ संतुलन-भावना को खो बैठती हैं।" रेहाना अपना मत प्रकट करती।

जो भी हो, किसी भी तरह विश्वास नहीं होता कि हमारी जैसी हमारे ही साथ की कुछ लड़कियाँ ऐसी-ऐसी भयानक करतूतें किस तरह करती हैं।"

कहने को ये जवानी की बहारें और रंगीनियाँ थीं। घरवालों से झूठ बोल-बोलकर। सारी नैतिकता को धत्ता बताकर लेकिन लड़कियों का शोषण इसमें भी कम नहीं था। हिंसा के कई रूप थे— "मेरे इंकार करने पर ख़ुशवक़्त ने जूतों-लातों से मार-मार कर मेरा कचूमर निकाल दिया।" लड़कियों की 'न' के शायद कोई मायने नहीं होते। न तब थे और कमोबेश आज भी नहीं हैं। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ आज भी 'न' कहने के अपने हक़ के लिए संघर्षरत हैं।

क़ुर्रतुल ऐन हैदर की कहानी-कला की यह ख़ासियत है कि वे पात्रों के मन में प्रवेश करके उसके अंतर्द्वन्द्व को उजागर करने की कोशिश करती हैं। हिन्दी में नई कहानी और उर्दू में नया अफ़साना के अंतर्गत बाद में ये प्रयोग ख़ूब किए गए लेकिन उर्दू साहित्य में इसका चलन शुरू करने का श्रेय क़ुर्रतुल ऐन हैदर को जाता है। इस कहानी में भी वे इस सारी स्थिति के कारणों की पड़ताल करते हुए दो-तीन तरह के मतों पर विचार करती हैं–

"एक विचारधारा थी कि वही लड़कियाँ आवारा होती हैं जिनके पास सूझ-बूझ बहुत कम होती है। मानव-मस्तिष्क कभी भी अपनी बर्बादी की ओर जान-बूझकर क़दम नहीं उठाएगा लेकिन मैंने तो अच्छी-ख़ासी समझदार, तेज़-तर्रार लड़कियों को आवारागर्दी करते देखा था। दूसरी विचारधारा थी कि रुपये-पैसे, ऐशो-आराम का जीवन, क़ीमती भेंटों का लालच, रोमांस की खोज, साहसिक कार्य करने की अभिलाषा या मात्र उक्ताहट या पर्दे के बंधनों के बाद स्वतन्त्रता के वातावरण में प्रवेश

कर पुराने बंधनों से विद्रोह, इस आवारगी के कुछ कारण हैं। ये सब बातें अवश्य होंगी अन्यथा और क्या कारण हो सकता है?"

इतना ही नहीं, इस एक ही कहानी में वे इन दिनों का विस्तार विभाजन तक करती हैं। विभाजन का समय सभी वर्गों की स्त्रियों के लिए दिल दहला देने वाला अनुभव था। "मैं जीवन के इस अचानक परिवर्तन से इतनी हक्की-बक्की थी कि मेरी समझ में न आता था कि क्या हो गया! कहाँ अविभाज्य भारत की वह भरपूर, दिलचस्प, रंगारंग दुनिया, कहाँ सन् 48 के लाहौर का वह छोटा और अँधेरा मकान! देश त्याग! अल्लाहो-अकबर मैंने कैसे-कैसे दिल हिला देने वाले दिन देखे हैं।" इन सब विवरणों से उस परिवेश और माहौल की एक तस्वीर बनती है। बँटवारे के समय हुई हिंसा ने स्त्रियों की चेतना पर अजब दहशत का रंग भर दिया था। जो किसी तरह बच कर सरहद पार कर पाईं उनकी मुश्किलें भी कम न हुईं। विभाजन के कारण बहुतों की पढ़ाई बीच में छूट गई। इंद्रप्रस्थ कॉलेज ने भी उस वक़्त ऐसी महिलाओं के लिए विशेष कक्षाओं का इंतज़ाम किया जिससे वे अपनी डिग्री पूरी कर सकें।

दरअसल, ये सभी चित्र या औरतों के जीने के तरीक़े को लेकर जो द्वन्द्व उनके कथा साहित्य में है वह केवल शिक्षा संस्थाओं के अनुभव से ही नहीं आता। उनका परिवार ख़ास तौर पर तरक्क़ीपसन्द परिवार था, केवल विचारों से ही नहीं व्यवहार से भी। परिवार की सभी महिलाएँ पूरी आज़ादख़याली से जीने का अधिकार रखती थीं। उनके माता-पिता और बुआ, प्रतिष्ठित व सक्रिय लेखक थे। लिखने की विरासत उन्हें अपने परिवार से ही मिली। उन्होंने अंग्रेज़ी और उर्दू दोनों ही भाषाओं में लिखा। वे अंग्रेज़ी की पत्रकार थीं जिन्होंने 'इंप्रिंट' तथा 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ़ इंडिया' जैसी पत्रिकाओं में लेखन और सम्पादन का दायित्व सम्भाला। यह काम वे अपनी आजीविका के लिए करती रहीं और उर्दू में लेखन अपनी साहित्यिक-भाषिक निष्ठा के निर्वाह के लिए।

भारत की साझी सांस्कृतिक विरासत में उनका अटूट विश्वास और हर हालत में मानवीय मूल्यों को बड़ा रखने की कोशिश उन्हें बड़ा लेखक बनाती है। उर्दू साहित्य में उनका नाम मंटो, इस्मत, राजिन्दर सिंह बेदी और कृष्ण चन्दर जैसे बड़े रचनाकारों के साथ लिया जाता है। हालाँकि उनका लेखन कई अर्थों में इनसे बहुत अलहदा रहा। जिस परिवार और शिक्षा से उनका सम्बन्ध रहा उसने उनके स्वतन्त्रचेता मानस का निर्माण किया। उन्होंने बारह उपन्यास लिखे और कई कहानियाँ। इन सबमें 1959 में प्रकाशित 'आग का दरिया' ने भारतीय कथा साहित्य में उनकी उपस्थिति को स्थायी महत्व प्रदान किया। इसके अतिरिक्त 'मेरे भी सनमख़ाने', 'सफ़ीना-ए-ग़म-ए-दिल' आदि विशेष प्रसिद्ध हुए।

उर्दू साहित्य में उनका नाम अक्सर

इस्मत चुग़ताई के साथ लिया जाता है। दोनों समकालीन लेखिकाएँ थीं। साहित्यिक हल्क़ों में इस्मत, 'इस्मत आपा' नाम से मशहूर हुईं और क़ुर्रतुल ऐन हैदर 'ऐनी आपा' के नाम से। इस्मत बड़ी थीं। 1938 में वे अलीगढ़ में क़ुर्रतुल ऐन हैदर की चचेरी बहनों के साथ पढ़ती थीं। दोनों की परवरिश अलग-अलग माहौल में हुई। इस्मत की कहानियों में परदे के पीछे, 'ज़नाना' के भीतर स्त्रियों की रंगीन-बदरंग ज़िन्दगी को 'बेगमाती ज़ुबान' में बेपर्दा किया गया है। 'लिहाफ़' जैसी कहानी ने कुलीन समाज की पोल खोल दी थी। मज़ाहिया अंदाज़ में लिखी गईं उनकी कहानियाँ स्त्री के प्रति समाज के रवैये को लेकर कुछ ज़रूरी सवाल उठाती हैं। वे स्त्री की लाचारी की कहानियाँ भी हैं। मंटो के साथ इस्मत ने उर्दू साहित्य में एक अलग ढंग से प्रगतिशील लेखन की ज़मीन तैयार की। क़ुर्रतुल ऐन हैदर के यहाँ उसके बाद की, ज़्यादातर पढ़ी-लिखी लड़कियों की कशमकश है। वर्जनाओं और मुक्ति के बीच का अस्मिताबोध, नैतिकता के दबाव, इतिहास की करवटें और फ़लसफ़े—इन सबके ब्योरों से बनता साहित्य क़ुर्रतुल ऐन हैदर की पहचान है। दोनों क़रीब भी हैं और अलग भी, लेकिन सबसे मज़ेदार सच यह है कि दोनों एक-दूसरे से मुतासिर होते हुए भी एक-दूसरे को आड़े हाथों लेने से नहीं चूकतीं। इस्मत चुग़ताई ने क़ुर्रतुल ऐन हैदर पर 'पॉम-पॉम डार्लिंग' शीर्षक से लेख लिखा और उनके लेखन में फ़ैशनपरस्त मध्यवर्गीय मानसिकता को उनकी सीमा बताया जो उन्हें नई ज़मीन गोड़ने से रोकती है। उन्होंने कड़े शब्दों में क़ुर्रतुल की साहित्यिक सम्भावनाओं के क्षय हो जाने को लेकर चिन्ता जताई। क़ुर्रतुल ऐन हैदर के लेखन में जिस नएपन की बात की जा रही थी उन्होंने उसके प्रति कोई आश्वस्ति प्रकट नहीं की बल्कि 'नए बच्चे न जाने ख़ुद को क्या समझते हैं' के अंदाज़ में काफ़ी सख़्त लेख लिखा। ग़नीमत कि क़ुर्रतुल ऐन हैदर ने उस पर कोई तीखी प्रतिक्रिया नहीं दी। हाँ, इस्मत आपा के गुज़र जाने पर उन्होंने जो श्रद्धांजलि पूर्ण लेख लिखा उसका शीर्षक दिया 'लेडी चंगेज़ ख़ाँ।' उसमें वे लिखती हैं– "कभी-कभी मैं उनको लेडी चंगेज़ ख़ाँ पुकारती थी क्योंकि वह उर्दू फ़िक्शन की ऐसी चुग़तई सवार और तीरन्दाज़ थीं जिनका निशाना कभी नहीं चूकता था।" इसके आगे वे लिखती हैं, "उनकी कहानियों में जो बेसाख़्तापन और भाषा का चटख़ारा मिलता है, वह उनकी और उनके ख़ानदान की दूसरी औरतों की भाषा थी। इस्मत आपा एक मुहब्बत करने वाली, मुँहफट, साफ़गो, ढीठ क़िस्म की ख़ुशमिज़ाज औरत थीं।"

यह दो बड़ी हस्तियों की परस्पर नोक-झोंक थी जो साहित्यिक माहौल को दिलचस्प बनाती है। बहरहाल, यह लेख क़ुर्रतुल ऐन हैदर के साहित्यिक अवदान की कोई गम्भीर समीक्षा नहीं, इंद्रप्रस्थ कॉलेज की अपनी 'सीनियर' को याद करने का बहाना भर है। बाक़ी फिर कभी... ❑

उपन्यास अंश



सिनीवाली

हेति

(सुकन्या अकथ कथा)

कुंतल से पाटल पुष्प निकाल कर मैंने अपने सिरहाने रख दिया तथा उसे मन्त्रमुग्ध-सी देख रही थी। उस पुष्प की प्रति पंखुड़ी में कुमार के अपूर्व रूप के दर्शन हो रहे थे। किसी दल में उनके नेत्र तो किसी में प्रशस्त भाल, किसी में हृदयस्थल का चुम्बन लेता हार, मैं देख-देखकर प्रेम पुलकित हुई जा रही थी। उसी क्षण पवन का एक झोंका आया... पाटल पुष्प सिहर उठा। इससे पूर्व प्रसन्न होकर मैं उसे पवन संग प्रसून का नर्तन कहती, परन्तु मैं दीपक की भाँति इस पुष्प को अपने करतल से सुरक्षा देने लगी कि कदाचित पवन का झोंका प्राणप्रिय पुष्प की पंखुड़ी विखण्डित न कर दे।

बकुल के पुष्परेणु से सुगंधित तथा तमाल के जल से शीतल वो समीर मुझमें असंख्य इच्छाओं का द्वार खोल रहा था। मैं नीरव नभ में विचर रहे चन्द्रदेव को देखकर मन-ही-मन प्रार्थना कर रही थी, "हे सुधांशु, अमृत दान कर देवताओं तथा पितरों को तृप्ति प्रदान करने वाले, हे विश्वलोचन, मेरे नयनों को प्रतीक्षा न कराएँ। आज तुम्हारी ज्योति से सज्जित ये रात्रि भी मुझे शान्ति प्रदान नहीं कर रही। मेरे व्याकुल नयन को कुमार का दर्शन शीघ्र हो। मुझे आशीष दें... मेरे जीवनपथ के सहगामी शीघ्र ही मुझे दर्शन दें।"

उस दिवस मैंने जो लघुदर्पणजड़ित मुँदरी पहनी थी, उसे उतार कर निकट ही रख दिया। उस मिलन के क्षण जब कुमार मेरे निकट आए थे, इसी मुँदरी में उनकी मुस्कान प्रतिबिम्बित हो रही थी जो मुझे अभी तक मूर्छित किए हुए थी। मुँदरी में वही मुस्कान पुनः तरंगित होने लगी परन्तु वो मधुर हास असंख्य लहरों का रूप लेकर मेरी ओर क्यों आ रहा था! चन्द्रशाला में उनकी मादक मुस्कान अभी तक उद्वेलित

सम्पर्क *: ई-मेल : siniwalis@gmail.com*

कर रही थी मुझे। लेकिन वो तरंग केवल मेरे अंग-प्रत्यंग के स्पर्श की आकांक्षिणी नहीं थी वरन समा लेना चाहती थी स्वयं में मुझे। उर्वी कहा करती थी मैं ऐसी वीणा की भाँति हूँ जिसके तार अभी तक झंकृत नहीं हुए। अस्पृश्य वीणा... परन्तु कुमार की वाणी की अमिय धारा, उनका हास, मेरी देह तथा मन के तारों को छेड़ रहे थे। हाय, कहीं मैं झंकृत न हो जाऊँ...। जब उन्होंने एकांत में पुष्प भेंट करते हुए मुझे स्पर्श नहीं किया तो आकाश में भ्रमण कर रहे शशि के समक्ष ये हठ क्यों? परन्तु क्या इस रात्रि में, मेरे हृत सत्य कहना तुम्हारी भी इच्छा इन लहरों में समाहित हो जाने की तो नहीं! स्वयं से स्वयं की रक्षा करना कितना दुष्कर है? जब मन आत्मसमर्पण चाहता है तो विवेक पथ में क्यों खड़ा हो जाता है?

रक्तकमल की पंखुड़ी को उठाकर मैंने अपने चक्षु पर रख लिया। सम्भवतः ये पुष्पबाण से मेरी रक्षा करे। जो कमल मेरी कमनीयता ग्रहण करने के लिए मेरा मुख देखा करता था, आज वही इतना रुक्ष क्यों हो गया। हाय, क्या रक्तोत्तपल ने भी अपनी कमनीयता कुमार के अधरों को दे दी?

मैं अपनी रक्षा का प्रयत्न छोड़ पर्यंक पर लेट गई। मैंने अनुभव किया कि मनुष्य अपनी रक्षा के लिए जिस अस्त्र का चयन करता है, कभी-कभी वही चयन ही उसे असुरक्षित कर देता है।

नभ में चन्द्र भी कुमार के मृदुहास से अलंकृत हो विचर रहा था। क्षण-क्षण मुस्कान के बाण से मुझे मूर्च्छित किए जा रहा था। पाटल पुष्प, माला एवं शय्या का कमल जो मुझे सुख देने, मेरे ताप को शान्त करने के लिए बिछाए गए थे, सभी वैरी निकले। सभी कुमार के हास में परिवर्तित हो गए।

मेरी देह की शिराओं में संगीत बज उठा। झंकृत तन-मन के मध्य श्वासों का नर्तन! मैं स्वयं ही अपने वश में नहीं। ये अपूर्व अनुभव! अलौकिक आनन्द! मैं स्वयं को कैसे वश में रखूँ? अपने वक्षोज पर रखे काँपते कमलपत्र पर करतल रख उत्तरी गवाक्ष के निकट खड़ी होकर अपने श्वास को संयत करने लगी। मैंने देखा, अतिथिभवन के कक्ष में जहाँ कुमार ठहरे थे, वहाँ दीपक प्रज्ज्वलित था।

उर्वी ने कहा तो था कि कुमार प्रस्थान कर गए हैं परन्तु मुझे प्रतीत हो रहा था वो विदा होकर भी उसी कक्ष में थे लेकिन सत्य तो ये था कि वो विदा हो गए थे।

'विदा' शब्द से उर उद्वेलित होने लगा। पुनः कब उनके दर्शन होंगे। क्या चन्द्रशाला का क्षणिक मिलन अहोभाग्य में परिवर्तित हो पाएगा!

प्रेम दुकूलिनी (नदी) की भाँति है। एक तट प्रतीक्षारत हो भी जाए तो क्या दूसरे तट को ज्ञात हो पाएगा! तट की विवशता है उसका स्थिर रहना परन्तु हमारे मध्य प्रवाहित जलदेव से मैं प्रार्थना कर रही थी कि मेरा संदेश उस तट तक प्रसारित कर दें।

अमृतयोग ही रहा होगा जो क्षणभर के लिए उनके दर्शन हुए। मानस पटल पर कितनी ही बार वो दृश्य जीवन्त हुआ जब दो पद्मपुष्पों का संयोग हुआ था परन्तु उनकी विदाई ने कितनी पीड़ा दी। प्रेम भी पाटल

पुष्प की भाँति है, पुष्प एवं कंटक संग-संग। पाटल पुष्प हाथों में लिए सोच रही थी पुनः कुमार के दर्शन कब होंगे?

मेरे नयनों में निद्रा समा जाए... तो स्वप्नकुँज में उनका सान्निध्य प्राप्त हो परन्तु निद्रा, सेविका तो नहीं है कि मेरे आदेश पर उपस्थित हो जाए। नींद की इस भाँति प्रतीक्षा प्रथम बार... ये पल हैं प्रतीक्षा के, व्याकुलता के, कम्पन के, स्पंदन के।

उत्तरी वायु कुंदलता से लिपट कर मेरे पास आ गई। 'सखा, तुम्हारा मूक संदेश जो अनवरत तुम मुझसे कह रहे थे, उसका अर्थ मुझे कुमार से मिलन के पश्चात ज्ञात हुआ।' कुंदलता से कुछ पुष्पदल वृंत से विलग हो कक्ष में बिखर गए। वहीं कहीं निद्रा देवी भी खड़ी थीं जो मेरे नयनों में उतर आईं। स्वप्न में मैंने देखा, सोलह कलाओं से पूर्ण चन्द्र निरभ्र आकाश में अमृतघट लिए विचर रहा था। घट से छलक कर अमृत धरा पर झर रहा था। पेड़-पौधों पर बरस रही रजतकिरणें पुष्पों को और अधिक कमनीय बना रही थीं। दिवस की श्रांति के पश्चात धरा की संतानें विश्राम कर रही थीं।

प्रियतम संग प्रिया अभी-अभी सुर-साधना समाप्त कर, निढाल वीणा के समान पड़ी थी। रात्रि में उसने अपने बहुमूल्य आभूषण उतार कर अपने हृदयेश को रिझाने हेतु पुष्पमाला धारण किया था जिसकी कोमल पंखुड़ियाँ उसके प्रियवर को मृदुलता प्रदान कर रही थीं। पुष्पहार की पंखुड़ियाँ प्रिय के श्वास से स्पंदित हो रही थीं। प्रिया उसके बाहुपाश में उनींदी थी। पुनः देखा शिशु को अमृत पान करा माता निद्रा में लीन थी। आकाश में शशि को देखकर शिशु खिलखिलाकर हँस रहा था, कर बढ़ाकर वह उस सुधाघट संग क्रीड़ा करने हेतु आतुर हो रहा था। उसके नवीन चार धवल दंत चाँदनी में द्युतिवंत हो रहे थे।

हठात्...!

सुधांशु का अमृतघट किसने हर लिया! उसकी प्रभा कालिमा में क्यों परिवर्तित हो गई! वो खिलखिलाता शिशु, अपने प्रिय की भुजाओं से लिपटी कामिनी, सभी दृष्टिपटल से ओझल हो गए! भयंकर गर्जना के साथ प्रभाहीन होकर चन्द्र धरती पर गिर पड़ा। मही की छाती फट पड़ी। पर्वत कम्पित हो उठे। उनकी शिलाएँ विखण्डित हो गिरने लगीं। नग (पर्वत) में निवास करने वाले भयंकर फणींद्र भयभीत हो अपने निवास स्थान तज कर भागने लगे। उनके फणों से अग्नि लहक रही थी। उनकी दृष्टिपथ में जो भी आते, वे उन पर अपना फण पटकते। उनके डँसने से चहुँ ओर अग्नि विकराल रूप धारण कर रही थी। जो विशाल घने वृक्ष पुष्पों, फलों से लदे अपनी भुजाएँ उठाए देवपथ से वार्ता कर रहे थे, वो भूपतित हो रहे थे। ज्यों युद्धभूमि में सैनिक क्षत-विक्षत हो मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। ये जग धूमाच्छादित (धुआँ) हो गया। जीव-जन्तु, मानव के भयावह क्रंदन एवं कोलाहल से संसार त्राहि-त्राहि कर उठा।

ये कैसा अशुभ स्वप्न! मेरी निद्रा टूट गई। भयभीत हृतल पर कर रखे मैं उठ बैठी। मेरा सम्पूर्ण शरीर कम्पायमान होकर श्रमजल से नहा गया। अनुलेप, जो उर्वी लगाकर गई थी, स्वेद संग बहने लगा। मेरे

हृदय की गति उस क्षण से पूर्व कभी इतनी तीव्र नहीं हुई। ज्यों वो श्वासों की डोरी तोड़ देने को व्याकुल हो रही हो। आशंकाओं के मेघ घुमड़ने लगे। इस अमंगलकारी स्वप्न का क्या संकेत है? क्या पिताजी महाराज पर कोई संकट आने वाला है अथवा हमारा राज्य कमलपुर शत्रु द्वारा विजित होने वाला है? कदाचित माता पर काल की दृष्टि तो नहीं पड़ गई? मेरी अन्य माताएँ जो मुझे अत्यंत स्नेह करती हैं, उन पर तो कोई संकट नहीं आने वाला है? मेरे भ्राताओं पर ग्रह-नक्षत्र कुपित तो नहीं हो गए- भय से कंठ सूखा जा रहा था। स्वयं को स्थिर करने का प्रयत्न करते हुए मैं जल लेने उठी तो दृष्टि गई, अतिथिभवन का दीपवृक्ष तो जगमगा रहा था परन्तु मेरे काम्य, मेरे प्रिय जिस कक्ष में ठहरे थे, वो अंधकारमय था? अतिथि कक्ष की समस्त दीपिकाएँ कैसे बुझ गईं? वासंती पवन इतनी निर्मम कैसे हो सकती है? आश्चर्य है, किसी प्रहरी अथवा सेवक की दृष्टि भी नहीं गई। कोई तो दीप प्रज्ज्वलित कर दे। क्या निद्रा ने उन्हें इतना विवश कर दिया कि उन्हें इतना भी भान नहीं कि कक्ष में अंधकार नहीं रहना चाहिए। अशुभ संकेत है ये। मैं ही सेविका को आदेश देती हूँ कि वह वहाँ दीप जला दे। मैं द्वार की ओर अग्रसर हुई परन्तु मेरे बढ़ते पग रुक गए। मैं भी कैसी बावली हुई जा रही हूँ! सम्भव है कोई मुझसे प्रश्न न करे परन्तु मौन प्रश्न तो उठेंगे ही... उस अतिथि कक्ष से मेरी इतनी आसक्ति क्यों?

मैं द्वार से लौटकर शय्या पर आकर बैठ गई। तनिक श्वास स्थिर होने के पश्चात दृष्टि गई, मेरे गले में बकुल पुष्प की माला मुरझा गई थी। ताप हरने के स्थान पर वह भय का आहार बन गई। उसे उतार कर सुगंधित जल का छपाका देने का यत्न करने लगी कि देखा मेरे सिरहाने रखा पाटल पुष्प गिर पड़ा था। उसकी कोमल पंखुड़ियाँ विखण्डित हो कक्ष में यत्र-तत्र बिखर गई थीं।

हृदय पुष्करिणी की भाँति है। कँकरी गिरते ही जल में हलचल मच जाती है परन्तु मेरे हृदय के सरोवर में तो शिलाखण्ड गिर पड़ा था। भयावह, अभव्य, अमंगलकारी स्वप्न कितनी अप्रिय कल्पनाएँ, दुश्चिन्ताएँ अपने साथ लाया था।

* * *

कष्टकारी, तमस्वी रात्रि व्यतीत हो गई परन्तु उस भोर बालार्क (प्रातःकाल का उगता सूरज) का दर्शन पाकर भी मन मुदित नहीं हुआ। मैं सरोवर किनारे बैठ गई। कदाचित राजहंस की क्रीड़ा मेरी पीड़ा हर ले। मयूर का नृत्य देखकर मन तनिक प्रसन्न हो जाए, परन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वाटिका ने भी मेरी ही भाँति दुःस्वप्न देखा हो। शिशिरांत ऋतु होते हुए भी उसका श्री किसी ने हर लिया था। मीन, जल में निश्चेष्ट पड़ी थीं। आहार देने पर भी मेरी ओर नहीं आईं। कपोत एवं अन्य खग तिन्नी का दाना त्याग अशोक एवं अन्य वृक्षों पर पृथ्वी की ओर दृष्टि गड़ाए मौन बैठे थे। गुंजनिकेतन भी पुष्पों के निकट नहीं मँडरा रहे थे। राजहंस, वापी के निस्तरंग जल को निहार रहा था, हंसिनी संग विहार नहीं कर रहा था। मृग मुझे देखते कुलाँचे भरते हुए

मेरे अंक से नहीं लिपटे। पुष्प प्रस्फुटित तो हुए थे वरंच सुगंध नहीं बिखेर रहे थे। मेरा प्रिय सुकण्ठ भी प्रतिदिन की भाँति मुझे देखते ही कुँवर, कुँवर नहीं रट रहा था।

मैं ताल किनारे से उठकर अपने प्रिय वृक्षों के निकट गई। सभी शोभाहीन खड़े थे। प्रतीत हो रहा था कि वासंती वायु ने भी उस वाटिका में प्रवेश नहीं किया था।

मेरी वैभ्राज वाटिका मुझे भयभीत क्यों प्रतीत हो रही थी! कदाचित अमंगल का भान इसे भी हो गया हो। क्या ये अदृश्य के अट्टहास का संकेत था?

तभी वातावरण में संगीत छेड़ती, खिलखिलाती उर्वी आ पहुँची। मेरा निस्तेज मुख देखती मुँह बनाती हुई बोली, "राजकुमारी, आज आपके अधर का अधरज (ओठों की लाली) किसने हर लिया, जिस ओष्ठ का रक्तिम रंग, पुष्प भी भिक्षा माँगने हेतु आपके समक्ष नत रहते हैं, वो आज रंगहीन क्यों?"

मैं कुछ न बोल सकी। मेरे केशों को अपनी उँगलियों में घुमाती हुई बोली, "अभी तो प्रतीक्षा शुरू हुई है कुँवर... अभी से तपस्विनी का रूप धारण कर लिया। माना कि प्रेम तप है परन्तु इस तप में शृंगार निषेध नहीं है। न आभूषण, न शृंगार... उन्मुक्त केश, चिन्तामग्न अशोक वृक्ष के नीचे विरहिणी बैठी हैं।"

बीती विभावरी मेरे नयनों को दुःस्वप्न दे गई। मेरे हृदय में आशंका एवं भय की असंख्य लहरें हिलोरें ले रही थीं और उस अल्हड़ को भान हो रहा था कि एक मारक मुस्कान ने मेरी ये दशा कर दी। प्रेम के तप ने नहीं... अदृष्ट के होने वाले अट्टहास की आशंका से मैं काँप रही थी। मैं उसे अपने दुःस्वप्न के बारे में बताती, इससे पूर्व ही मेरा कर अपने कर में लेकर वो बोली,' "सखी एक दिवस में ही आपके कपोल मुरझा गए। चन्द्र के समान मुख पर मानो ग्रहण लग गया। कदाचित दीपशिखा की भाँति सम्पूर्ण रात्रि साधना करती रही हैं तभी दिवस में बुझ चुकी दीपिका के समान मुख का रंग हो गया है। मैं पद्माकर से कमलपत्र तोड़ लाई हूँ।" इतना कह कर उसने मेरे करतल पर कमल पत्र को रखा और परिहास करती हुई बोली, "इस पत्र को अपने हृदय से स्पर्श कर दीजिए। मैं इसे सरिता में प्रवाहित कर आती हूँ। कुमार को संदेश प्रेषित हो जाएगा। नदी का कलकल जल ही आपके लिए संदेशवाहक बन जाएगा। जल से परिपूर्ण हृदिनी (नदी) संग अपने हृदय की सरिता का संगम करा दीजिए।"

कितनी ठिठोली कर लेती है ये उर्वी पर ये क्या... अकस्मात् उसके मुख पर वही भाव आकर ठहर गया जो कल रात्रि सेज सज्जित करते हुए आया था। उसके स्वर में ऐसी शान्ति छा गई ज्यों छन्न-छन्न, छनक-छनक करते शिंजनी का स्वर हठात् थम गया हो!

"सखी, सत्य तो ये है कि जो प्रेम इतनी वेदना देता है उस प्रेम के पास हृदय होता ही नहीं है। यदि होता तो क्या वो निष्ठुर की भाँति इतनी पीड़ा देता, इतनी परीक्षाएँ लेता!" उर्वी के नेत्र से अश्रु मेरे करतल पर ढलक आए।

"उर्वी, तुम मुझे सखी कहती रही

परन्तु तुम मुझे राजकुमारी ही मानती हो! यदि ऐसा नहीं है तो अपनी वेदना, अपनी पीड़ा मुझसे कहने में क्या संकोच!"

"वेदना ही तो प्रेम को अर्थपूर्ण बनाती है। प्रेम में प्रतिदान की इच्छा हो तो प्रेम नहीं आपणिक कर्म (व्यापार) हो जाता है। सखी आप से ...."

तभी दासी ने आकर कहा, "राजकुमारी! युवराज अनार्त पधार रहे हैं।"

"भ्राता ... यहाँ उद्यान में!"

सेविका प्रस्थान कर गई।

"कुँवर, ये संचित पुष्प मैं महाराज को..."

"उर्वी, तुम यहीं ठहरो! तुम्हें प्रस्थान की क्या आवश्यकता है। भ्राता ऐसा कुछ विशेष तो नहीं कहने आएँगे कि एकांत की आवश्यकता हो। उनके प्रस्थान के पश्चात हम दोनों संग चलेंगे।"

"राजकुमारी, मुझे आज्ञा दीजिए...!" कहकर वो प्रस्थान कर गई। विगत रात्रि से उर्वी का आचरण भिन्न प्रतीत हो रहा था।

* * *

भ्राता अनार्त ने मुझसे चिन्तित होते हुए पूछा, "सुकन्ये, अकस्मात् ऐसा क्या अप्रिय घटित हुआ कि आज तुम पिताश्री के कक्ष में नहीं गई। तुम्हारा मुख देखे बिना उनका दिवस प्रारम्भ नहीं होता। मुझसे उन्होंने कहा कि मैं स्वयं जाकर तुम्हारा समाचार ज्ञात करूँ। सब मंगल तो है?"

"नहीं भ्राता, ऐसी तो कोई बात नहीं। मन तनिक व्याकुल हो रहा था, इसलिए उन्हें प्रणाम निवेदित नहीं कर सकी। मैं शीघ्र उनके समक्ष प्रस्तुत होती हूँ।"

"व्याकुल! क्या कोई चिन्ता है अथवा किसी ने तुम्हें तनिक भी कष्ट पहुँचाने का दुस्साहस किया है... मैं इसी क्षण...।"

"नहीं भ्राता, आप चिंतित न हों, ऐसा कुछ नहीं घटित हुआ।"

"सुकन्ये, तुम्हारा प्रसन्न रहना हमारी प्रसन्नता के लिए आवश्यक है", बोलकर वो कुछ क्षण मेरे समीप रुके। पुनः वो पिताश्री के पास लौट गए।

भ्राता तो प्रस्थान कर गए। मैं भी जाने के लिए संचित पुष्प उठाने लगी कि देखा, उर्वी रूपमंजरी पुष्प लता के झुरमुट से अपलक उस पथ को निहार रही थी जिधर से भ्राता अनार्त गए थे। उसकी व्याकुल दृष्टि को तृप्त होते मैं देख रही थी अर्थात उर्वी भी प्रेम में विवश थी। उसके तृषित नेत्र भ्राताश्री के दर्शन पाकर तृप्त हो रहे थे। हर्षित होते हुए मैंने उसके स्कंध पर अपना कर रखते हुए कहा, "सखी अपने प्रेम को शब्दों का सान्निध्य दो, कदाचित् भ्राता को तुम्हारी दशा का भान न हो!"

"कुँवर, मुकुट में कंकड़ नहीं मणि स्थान पाता है..!"

"परन्तु प्रेम तो प्रेम होता है...।"

"कदाचित् ऐसा होता।" किंचित क्षण रुककर पुनः बोली, "आपके भ्राता का ही कथन है ये।" (दीर्घ श्वास लेकर) "उचित भी है आकाश में विचरता चन्द्रमा प्रिय होने पर भी धरा पर तो नहीं उतर आता!"

पुष्प के समान मुर्झाए मेरे मुख को देखकर माता चिन्तित हो उठीं। उन्होंने विह्वल होते हुए मुझे हृदय से लगा लिया। कुछ क्षण पश्चात् मेरा ललाट चूमती हुई

बोलीं, "पुत्री, तुम विदुषी हो, राजकन्या हो। राजकन्या का जीवन सरल नहीं होता। प्रथम दृष्टया सुख-समृद्धि के मध्य जीवन अवश्य ही सुखद प्रतीत होता है परन्तु उसे सदैव स्वयं एवं परिजनों के जीवन की सुरक्षा एवं राज्य-सम्बन्धी उत्तरदायित्वों का निर्वहन भी करना पड़ता है। जीवनपथ में कठिनाइयाँ आती रहती हैं। राजपुत्री का इस भाँति अधीर होना शोभा नहीं देता। जब तुम महारानी बनोगी तो भाँति-भाँति की समस्याएँ तुम्हारे समक्ष उपस्थित होती रहेंगी। विगत रात्रि के स्वप्न के कारण तनिक भी चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। यदि मानव द्वारा अमंगल होने वाला होगा तो तुम्हारे अत्यंत पराक्रमी पिता एवं भ्राता जिनकी वीरता दूर-दूर तक प्रसिद्ध है, वे उसे घटित होने ही नहीं देंगे। यदि देव कुपित होना भी चाहेंगे तो हम उनसे प्रार्थना करेंगे। वे हम पर सदैव की भाँति अवश्य कृपा करेंगे।"

माता के शब्दों से मुझे सम्बल मिला। सखियाँ मुझे प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार के वाद्ययन्त्र, नाट्य-प्रस्तुति एवं नृत्य के द्वारा प्रयत्न कर रही थीं।

कभी वह मेरे संग कंदुक क्रीड़ा करतीं तो कभी स्नान का आनन्द लेती हुई मेरी देह पर जल उलीचते हुए कुमार की बातें कर मेरा मनोरंजन करने का यत्न कर रही थीं परन्तु मेरे उर में आशंका के मेघ घुमड़ कर रहे थे। अनमनी ही सही मैं उर्वी के संग थी।

कुँजनिकेतन में लता से आच्छादित शिलाखण्ड के निकट बैठी थी। उर्वी नाना प्रकार के पुष्पों का हार बनाकर मेरे गले में डाल रही थी। अन्य आलियाँ स्वर्णयूथिका (पीली जूही) एवं बैजयंती की कुसुमों से मेरी देह सहला रही थीं। कुछ हास्य-विनोद प्रसंगों को सुना मेरा मनोरंजन करने का प्रयत्न कर रही थीं।

एक सेविका, पिताश्री महाराज का संदेश लेकर उपस्थित हुई, "राजकुमारी, महाराज एवं युवराज अनार्त आपके संग विहार हेतु जाना चाहते हैं।"

"अकस्मात् विहार हेतु!"

सम्भवतः माता अथवा भ्राता ने मेरे मुख से कान्ति उतर जाने की बात पिताश्री से कही होगी अथवा तात को मेरे अंतर्मन की पीड़ा का भान हो गया होगा!

अन्य सखियों एवं दासियों के प्रस्थान कर जाने के उपरांत उर्वी ने भेद भरे स्वर में कहा, "कुँवर, विहार आपको उपहार देता है। देखें, आज का कुलेल कौन-सा चमत्कृत करनेवाला उपहार देता है!"

दर्पण में अपना अंशुल (परिधान) देख मैं चकित रह गई। अचगरी उर्वी ने कितनी कुशलतापूर्वक मुझे नील एवं पीत रंग के परिधान से सज्जित कर दिया था। यही रंग तो कल कुमार ने धारण किया था। अन्यमनस्कता में मेरा ध्यान ही नहीं गया। मेरी देह ज्यों नभ एवं धरा का मिलन स्थल बन गई थी। मणिमुक्ता-युक्त मेरा उत्तरीय इस प्रकार द्युतिवंत हो रहा था ज्यों नभ में ग्रह-नक्षत्र देदीप्यमान हो रहे हों। मेरी ग्रीवा में श्रीमाल, भुजबन्द, केतकी, शीशफूल, कमरधनी... परन्तु सबसे अधिक आकर्षक, मनोहारी आज का नूपुर...! उसकी सज्जा देख मैं उसे अपने कर में लेकर निहारने लगी। घुँघरू तो इससे पूर्व भी जड़े होते

थे पैजनी में परन्तु...! क्रमबद्ध किंकिणी (घुँघरू) इस प्रकार जड़े थे जैसे एक मुखरित हो तो दूसरा किंचित मंद तो कोई उच्च स्वर में क्वणित (बजता हुआ) होता। इससे जुड़े पग की उँगलियों की शोभा बढ़ाने वाला हंसक..! सभी अतिसुन्दर! इसका शिंजन ज्यों संगीत की स्वर लहरी हो।

उर्वी इस पैजनी को पहनाती हुई बोली, "आज के विहार हेतु इस नूपुर का चयन किया है। लयबद्ध जड़ा हुआ इसका मंजीर पर्यटन स्थल को मधुर ध्वनि से भर देगा। वन में निवास करने वालों को भी तो ज्ञात हो, आज हमारी राजकुमारी कुलेल के लिए आई हैं।"

फिर उर्वी ने मुझे निहारते हुए मेरे केशपाश में रक्तिम पाटल पुष्पगुच्छ टाँक दिए। पाटल गुच्छ को स्नेह स्पर्श करती हुई मैं सोच रही थी कि उर्वी अवसर तथा मनोदशा के अनुरूप शृंगार करना जानती है। क्षणभर रुक कर उसने मेरे गले में रक्तिम पाटल पुष्प की अंकमालिका (छोटा हार) डाल दी और मुस्कुराई, "कुँवर, कल्पना में राजकुमार का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए आप केवल पाटल पुष्प से ही शृंगार करने का विचार तो नहीं कर रहीं। यदि आपका मन रखने के लिए ये शृंगार कर भी दूँ तो वनविहार में कोई मुनिकुमार आपको मुनिकुमारी समझने की धृष्टता न कर बैठे तथा आपका आश्रम खोजते हुए राजभवन तक न पहुँच जाए।"

मैं उर्वी की विनोदप्रियता पर हँस पड़ी। ❑

फार्म IV

(नियम 8 के अंतर्गत)

आजकल के स्वामित्व का विवरण

(1) प्रकाशन	नई दिल्ली
(2) प्रकाशन अवधि	मासिक
(3) मुद्रक का नाम राष्ट्रीयता पता	अनुपमा भटनागर भारतीय प्रकाशन विभाग सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003
(4) प्रकाशक का नाम राष्ट्रीयता पता	अनुपमा भटनागर भारतीय प्रकाशन विभाग सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003
(5) सम्पादक का नाम राष्ट्रीयता पता	फरहत परवीन भारतीय प्रकाशन विभाग कमरा नं.601-डी सूचना भवन सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003
(6) उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझीदार या हिस्सेदार हों।	सूचना और प्रसारण मन्त्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली-110001 पूर्ण साझीदार है।

मैं अनुपमा भटनागर एतद् द्वारा घोषणा करती हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

अनुपमा भटनागर

(प्रकाशक)

कहानी

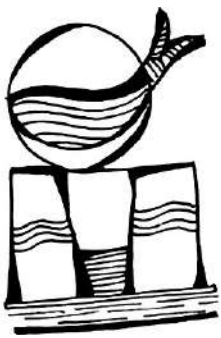


दीपक शर्मा

मंच

मैंने स्कूल से घर लौटते समय रोज़ की तरह इधर-उधर किसी से उस दिन भी बात न की।

चुपचाप स्कूल के साइकिल स्टैंड पर अपनी साइकिल का टोकन जमा कराया, साइकिल उठाई और चतुर्दिक पवन-मापी गति के साथ घर पहुँचकर ही दम लिया।



"आज इम्तिहान कैसा हुआ?" माँ रोज़ की तरह घर के दरवाज़े पर खड़ी थीं।

"पेपर अच्छा था," मैं हँसा।

"मुझे दिखाओ," माँ ने मेरी साइकिल मेरे हाथ से लेकर गलियारे में टिका दी।

"लो," पसीने से तर हुई अपनी क़मीज़ की जेब से मैंने वह आधा गीला पेपर माँ की ओर बढ़ाया।

"लाओ, बैग भी दे दो।"

"तुम पेपर देखो," माँ को मैंने बैग नहीं दिया।

"कल तुम्हारे साथ जो सम्स किए थे, उनमें से आठ सवाल ज्यों-के-त्यों आ गए।"

"हाँ," हँसकर माँ घर में दाख़िल हुईं, "अब बताओ, ज़रूरी -ग़ैर-ज़रूरी की मेरी पहचान कैसी रही?"

"ठीक है," मैं चिढ़ गया।

प्रफुल्लता का प्रकटीकरण मुझे तनिक नहीं भाता।

"लाओ, मेरा पेपर मुझे वापस दे दो।"

माँ ने कहा, "लो, इसे अपने कमरे

सम्पर्क *: ई-मेल : dpksh691946@gmail.com*

में रखकर हाथ धो लो। मैं खाने की मेज़ पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।"

"आज खाने में क्या है?" खाने के उल्लेख से मैं उत्सुक हो उठा।

"आश्चर्य! आश्चर्य!" माँ अपने स्वर में चंचलता ले आईं, "मालूम है किसी ने कहा था, सरप्राइज़ इज़ द बेस्ट एलिमेंट ऑफ़ द फ़ीस्ट-खाने का सबसे आनन्ददायक तत्त्व खाने वाले के पास अचानक पहुँचना है.....।"

"ठीक है, ठीक है," माँ के आमोद-प्रमोद पर मैंने दोबारा रोक लगाई।

"पापा के लिए क्या बनाया?" अपनी प्लेट में अपने मनपसन्द भठूरे, चने और दही-बड़े देखकर मैंने पूछा। पापा तली हुई चीज़ से सख़्त परहेज़ रखते हैं।

"जो तुम नहीं खाते," माँ हँसीं, "चावल, मूँग की दाल और करेला।"

"पापा का खाना भी लगा दो," मैंने खाना शुरू किया।

"अभी लगाती हूँ," माँ मेरे पास वाली कुर्सी पर बैठ गईं।

"अपने कॉलेज से तुम कितने बजे आईं?" माँ एक स्थानीय कॉलेज में राजनीतिशास्त्र पढ़ाती हैं।

"पौने एक," माँ ने कहा, "बारह बजे क्लास ख़त्म की। टैम्पो से पहले मिष्ठान भण्डार गई और यह सामान ख़रीदा। फिर रिक्शा लेकर आ गई।"

"आज कोई बात हुई?" लगभग रोज़ ही मैं माँ से यह सवाल पूछा करता।

"नहीं," माँ दोबारा हँसीं, "न घर में, न कॉलेज में और न ही रास्ते में....".

"सबने खाना खा लिया क्या?" ढाई बजे पापा घर पर आए।

"नहीं," माँ मुस्कुराईं, "सबने नहीं खाया, सिर्फ़ नन्दन ने खाया है।"

"क्या है खाने में?" पापा मेज़ पर जा बैठे।

"सुकरात ने कहा था, हंगर इज़ द बेस्ट सॉस- खाने में भूख से बड़ा कोई सालन नहीं।"

"अपनी हँसी और अपना सुकरात अपने पास रखो," पापा खाने पर टूट पड़े, "मुझे दोनों से सख़्त चिढ़ है।"

"दही-बड़ा लीजिए," माँ सहज बनी रहीं, "मिष्ठान भण्डार का है....।"

"ले लूँगा। तुम मेरी फ़िक्र न करो...".

माँ खाने की मेज़ से उठकर मेरे पास चली आईं।

"तुमने खाना नहीं खाया?" मैंने माँ के प्रति संवेदना प्रकट की।

"मैं बाद में खा लूँगी," माँ मेरे पास बैठ लीं।

शाम को माँ मुझे विभिन्न देशों तथा उनकी राजधानियों की सूची रटा रही थीं कि सोम अंकल आ गए, "कहाँ हो भाभी?"

"तुम पढ़ो," माँ ने तत्काल मेरी

कॉपी मेरे हाथ में पकड़ा दी, "इनकी ख़ातिरदारी ज़रूरी है....।"

सोम अंकल भी पापा की तरह उसी अख़बार में उप-सम्पादक थे, जिसका लखनऊ संस्करण चार महीने पहले बन्द हो गया था, किन्तु जहाँ सोम अंकल को फटाक से दूसरे ही सप्ताह एक दूसरे अख़बार में नौकरी मिल गई थी, पापा अभी भी बेकार थे।

"चाय के साथ आज भाभी के हाथ की पकौड़ी हो जाए," सोम अंकल बहुत ज़ोर से बोलते हैं, "भाई के लिए दूरदर्शन में जुगाड़ लगाया है। एक प्रोड्यूसर को राज़ी कर लिया है। भाई को वह महीने में दो प्रोग्राम दे दिया करेगा। धीरे-धीरे भाई वहाँ अपनी धाक जमा लेंगे।"

"कौन-से प्रोग्राम रहेंगे?" माँ ने पूछा।

"मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता," पापा ने माँ को फटकार दिया, "तुम अपने काम से मतलब रखो और जाकर चाय बना लाओ।"

"चाय के साथ पकौड़ी ज़रूर बनाना, भाभी," सोम अंकल ने कहा।

"क्यों नहीं!" माँ ने गर्मजोशी दिखाई, हालाँकि मैं जानता था कि माँ को पकौड़ी बनाना किसी बखेड़े से कम नहीं लगता।

"रात का खाना अब हल्का रखना," सोम अंकल को विदा देकर पापा मेरे कमरे में चले आए, "आज पकौड़ी कुछ ज़्यादा ही खाई गईं।"

"खिचड़ी बना लूँ क्या?" माँ ने पूछा।

"हाँ," पापा ने स्वीकृति में सिर हिलाया, "खिचड़ी बना लो। मगर साथ में पोदीने या धनिए की चटनी ज़रूर तैयार कर लेना।"

"ठीक है," माँ उठकर रसोई में लौट गईं।

"मेरे लिए पानी तो लाना, नन्दन," पापा मेरे बिस्तर पर पसर लिए।

"कल मेरा टेस्ट है पापा," मैं खीझा, "पहले ही सोम अंकल मेरा इतना समय बर्बाद कर गए हैं।"

"बक मत," पापा ने मुझे घुड़की दी, "तेरा समय बर्बाद कर गए हैं? सोम तो इधर आया ही नहीं।"

"आप लोग बहुत ज़ोर से बोलते हैं पापा...।"

"अब अपने घर में मैं बोलूँगा भी नहीं," बिस्तर से उठकर पापा ने अपनी चप्पल पकड़ ली, "हरामज़ादे! यह मेरा घर है। जैसा चाहूँगा, वैसा बोलूँगा...।"

"क्या हो रहा है?" माँ पापा की चप्पल के सामने आ खड़ी हुईं।

"पापा अपने-आपको गाली दे रहे हैं," मैंने कहा।

नौ वर्ष की अपनी उस अल्पायु में भी मैं जानता रहा, हरामज़ादा किसे कहा

जाता है। "आज मैं इसे नहीं छोड़ूँगा," पापा ने माँ को रास्ते से हटाना चाहा।

"टाल जाइए," माँ ने पापा से विनती की और मेरी ओर मुड़ लीं, "ऐसे नहीं बोलते बेटे। वे तुम्हारे पापा हैं। उनके लिए तुम्हारे मन में प्यार होना चाहिए, श्रद्धा होनी चाहिए..."

"तुम बताओ," मैं भड़क लिया, "क्या तुम पापा से प्यार करती हो? तुम उनके लिए श्रद्धा रखती हो?"

माँ का रंग सफ़ेद पड़ गया। झूठ बोलने का माँ को कम अभ्यास रहा।

"तू ठीक कहता है," पापा मेरी दिशा में हँसे और उन्होंने अपने हाथ की चप्पल ज़मीन पर छोड़ दी, "तुझे हरामज़ादा बोलकर मैं अपने-आपको गाली दे रहा था। तू हरामज़ादा नहीं है। तू मेरा बेटा है, मेरा बेटा। एक पत्रकार का बेटा। तभी तो तू आडम्बर की थाह लेता है, कपट को घेरता है, मिथ्याचार की थुड़ी-थुड़ी करता है...।"

"मैं रसोई में हूँ," माँ ने अपनी थिरता क़ायम रखी, "खिचड़ी बना रही हूँ...।"

"हाँ," पापा माँ के पीछे हो लिए, "तुम पूछती रहती थीं न, तुममें क्या कमी है, क्या ख़ामी है, जो तुम्हारे समर्पण के बावजूद मैं तुम्हारी क़द्र क्यों नहीं करता? तो सुन लो आज, तुम्हारा व्यवहार आयोजित है, संकल्पित है, सहज नहीं, स्वैच्छिक नहीं...नौ साल का वह बच्चा भी जानता है, तुम मुझे प्यार नहीं करतीं, मेरे लिए कोई श्रद्धा नहीं रखतीं...।"

"कल नन्दन का भूगोल का टेस्ट है," पापा के बहाने माँ ने मुझे सुनाया, "उसे अब पढ़ने दीजिए। अपना मंच हम फिर कभी लगा लेंगे...।"

"माफ़ करना," पापा ने कहा, "तुम्हारे साथ अभिनय करने की मुझे कोई लालसा नहीं.."

"घर घालना कोई आपसे सीखे," माँ रोने लगीं, "बेतरीक़े बोलेंगे, बेजा बात को उलझाएँगे...।"

"मैं मंचभीरू हूँ, भई, मंचभीरू," पापा रसोई से बाहर निकल लिए, "तुम्हारे जैसे नाटकीय प्रभाव प्रस्तुत करने में सर्वथा असमर्थ हूँ...।"

"मुझे माफ़ कर दो," पापा के बैठक में टिकते ही मैं माँ के पास रसोई में चला आया। माँ को अभिनय अधिकार सौंपने की मुझे जल्दी रही, "मेरी वजह से तुम्हें पापा से इतना कुछ सुनना पड़ा...।"

"नहीं बेटा," माँ ने मेरे अभिनय निर्देश सहर्ष ग्रहण कर लिए, "मैं उनकी किसी बात का बुरा नहीं मानती, और फिर यह चन्द दिनों की ही तो बात है, जल्दी ही उन्हें कोई नया काम मिल जाएगा और वे इस तरह बात-बात पर तुनकना छोड़ देंगे।"

"मैं समझता हूँ माँ," मैं आश्वस्त हुआ।

माँ का मंच साबुत था। ❑

कहानी



सुमन गुर्जर

करतब-करिया

"मिसेज़ जगतपालसिंह नहीं रहीं", सुबह की वॉक पर मिसेज़ सिंह के कहे ये शब्द मेरे कानों में अब तक गूँज रहे थे और उसका मधुबाला जैसा सुन्दर चेहरा, रह-रहकर आँखों के आगे घूम जाता था। सन चौरासी या पचासी का साल होगा, गुड़िया के पापा का ट्रांसफ़र भिंड हुआ था। हमारे तीनों बच्चे छोटे ही थे, गुड़िया ही नौवीं में थी। भिंड में ही डीएसपी थे जगतपालसिंह, हमारी बिरादरी के बड़े ही दिलेर और नामी अफ़सर। हम सुबह पहुँचे ही थे कि एक जीप दरवाज़े पर आकर रुकी, प्लास्टिक की डलिया और थर्मस लिए अर्दली भीतर आए। 'नमस्ते' करके एक वर्दी वाले ने कहा, "बाईसाहब ने बच्चों के लिए दूध और नाश्ता भेजा है।" वे गुड़िया के पापा को पहचानते थे, ऐसा लगा। किन बाईसाहब ने ये नाश्ता भेज दिया? प्रश्नवाचक दृष्टि से मैंने इनकी ओर देखा। "अरे जगतपालसिंह साहब के यहाँ से आया है, ट्रक तो उन्होंने ही भेजा था न तो पता लगा लिया होगा।" इन्होंने मेरी दृष्टि पहचानकर समाधान किया। "ठीक है बेटा तुम लोग जाओ, बाईसाहब को कहना शाम को हम और गुड़िया की मम्मी बंगले पर आएँगे", कहकर इन्होंने अर्दली विदा कर दिए।

शाम को कलफ़ लगी लखनवी साड़ी पहनकर, ढीला जूड़ा बनाकर मैं अच्छे से तैयार हुई। बच्चों को भी बढ़िया कपड़े पहनाए। चलते समय जब मैचिंग का पर्स साथ में लिया तो इन्होंने टोक ही दिया, "अरे भाई कहीं पार्टी में जा रहे हैं क्या?"

मैं खिसियाकर चुपचाप फ़िएट में बैठ गई।

हमारी गाड़ी देखकर संतरी ने बंगले का बड़ा-सा फाटक खोला। बंगले के मुख्यद्वार तक पहुँचने वाली सड़क के दोनों ओर फ्रंट गार्डन में गेहूँ लगा था। क़रीब आधा किलोमीटर सड़क पार करने के बाद पोर्च के पहले ही इन्होंने गाड़ी रोक दी। हम सब गाड़ी में से उतरे तो एक सिपाही लगभग दौड़ता हुआ-सा आकर इन्हें 'नमस्ते' करने

सम्पर्क : *ई-मेल : sumangurjar@gmail.com*

लगा।

"अतरसिंह, बाईसाहब हैं?" इन्होंने उससे पूछा।

"हाओ, साहब भी बैठे हैं ऑफ़िस में। आप ही का इंतज़ार कर रहे हैं", अतरसिंह ने जवाब दिया। ये मेरी ओर देखने लगे तो अतरसिंह समझ गया, "बाईसाहब भीतरे हैं, बहनजी को लयें जात हूँ। आप उतें पधारो।" इनको दूर बने दो कमरे दिखाता हुआ वह हमारे आगे चलने लगा। "ठीक है तुम भीतर जाओ", मुझे कहकर ये बंगला ऑफ़िस की तरफ़ चले गए।

एक बरामदा जिसमें प्लास्टिक के तारों से बुनी दो कुर्सियाँ पड़ी थीं, उसके बाद बड़ा-सा हॉल, इसमें भी चार दफ़्तरनुमा कुर्सियाँ ही थीं, कोई सजावट नहीं। फिर एक बड़ा दालान जिसमें लोहे का भारी-भरकम झूला रखा था, पार करवाकर अतरसिंह ने हमें एक कमरे के बाहर खड़ा कर दिया और आवाज़ लगाई, "बाईसाहब गवालीयर वाले भाईसाहब की बाई आयीं हैं।" "अच्छा अच्छा", भीतर से एक कोमल-सा स्वर सुनाई दिया और पल भर में ही एक मझोले क़द की मक्खन-सी सफ़ेद लड़की, मुस्कुराती हुई कत्थई रंग की सिंथेटिक साड़ी में सर ढके सामने आ खड़ी हुई। "आइए आइए, बहनजी, बहुत ही खुसी भई, आप आईं", और वह मेरे दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर हमें भीतर ले आई। तीनों बच्चे भी मेरे पीछे-पीछे ही आ गए। "बैठिए-बैठिए बहनजी", मार्कीन की सफ़ेद चादर झटकारते हुए वह कहने लगी। मैं दूसरे के बिस्तर पर कभी बैठती नहीं थी, सो खड़ी रही। मेरी देखा-देखी बच्चे भी खड़े रहे। "अच्छा अच्छा अतरा दादा कुर्सियाँ लगा दो", वह शायद मेरी परेशानी समझ गई और हड़बड़ाते हुए बोली। अतरसिंह एक के ऊपर एक रखी हुईं चार प्लास्टिक की कुर्सियाँ ले आया जो वहीं पलंग के पास लगा दीं। हम सब बैठ गए। वह अपने पलंग पर पालथी मार कर बैठ गई और गुड़िया को खींचकर अपनी गोद में बैठा लिया। "क्या नाम है बिटिया तुम्हारा", पूछते हुए गुड़िया के हाथों की मिट्ठी लेने लगी। मैं उस छोटी-सी बाईसाहब को देखे जा रही थी। 22, 23 साल की, कितनी ख़ूबसूरत लड़की, एकदम मधुबाला। मैदा से हाथों में काँच की रेशमी चूड़ियाँ। माथे पर छोटी-सी लाल बिन्दी। न कोई ज़ेवर न मेकअप पर अपरूप सुन्दरी वह। बातें करते-करते पलकों को झपकाए तो उन घनी-काली बरौनियों को मैं देखती रह जाऊँ जो नाक के उभार तक को छू रही थीं। हाय, ये जगतपाल की बीवी है या उनकी कोई बेटी? सुना तो है कि दो बीवियों से सात बेटियाँ हैं जगतपाल को, ये कौन है? मैं उस हूर की परी को निहारते हुए सोच रही थी और वह गुड़िया से बातें करने में मगन थी। बातूनी गुड़िया भी उसके सवालों के चटर-पटर जवाब दिए जा रही थी।

"नमस्ते आंटीजी", कहते हुए एक 11-12 साल की बच्ची जिसने छींट का घेरदार फ्रॉक पहना हुआ था, कमरे में आई। बच्ची भी क्या, इसी सुन्दरी का बाल रूप! "नमस्ते बेटा", अभिवादन का जवाब देते मैंने बच्ची की ठुड्डी सहलाई। "माफ़ करना

बहनजी, हमने तो चाय-पानी कछु पूछी ही नहीं", कहते हुए वह बाहर चली गई।

"बैठो बेटा, क्या नाम है तुम्हारा", मैंने उस छोटी बच्ची से कहा।

"मधु, मधुसिंह नागर", बच्ची ने जवाब दिया।

"शाबाश मधुसिंह नागर, किसकी बेटी हो?" मैंने खोज-बीन शुरू कर दी थी।

"डिप्टी जगतपालसिंह नागर हैं हमारे पापा।" बच्ची ने गर्दन अकड़ाते हुए जवाब दिया।

"वाह भई वाह, तो तुम डिप्टी साहब की बेटी हो, ये कौन थीं, तुम्हारी दीदी?" मैंने पूछा तो गुड़िया मेरा मंतव्य भाँपकर होंठ तिकोने करके मुस्कुरा रही थी।

"नहीं, नहीं, वो तो हमारी मम्मी हैं," मधु ने कहा।

"ठीक है मधु जाओ इन दीदी भैया को बाहर घुमा लाओ", अब मुझे उसकी माँ की कहानी जाननी थी।

"बहनजी देर लग गई, क्या बताएँ, ये इनकी दवाई का भी टाइम है ना, अब दवाई के संग तो आप जानती ही हो, दस चीज़ें लगानी पड़ती हैं", वह सफ़ाई देती हुई कमरे में घुसी। ये कौन-सी दवाई है जिसके संग दस चीज़ें लगती हैं, मैं कुछ समझ न पाई पर दोनों हाथों में नाश्ते की ट्रे पकड़े वह खुद इतनी हड़बड़ाई हुई थी कि मैंने कुछ पूछना ठीक नहीं समझा। कमरे में दाएँ-बाएँ देखते हुए कहीं टेबल न पाकर उसने ट्रे पलंग पर ही रख दी और प्लेट में पकौड़े लगाने लगी। "बैठ जाओ तुम आराम से, मैं ले लूँगी अपने-आप, कोई बाहर की नहीं हूँ", कहते हुए मैंने उसके हाथ पकड़ कर उसे पास ही बैठा लिया। "फूलपुरा वाली तहसीलदारनी की भतीजी ही तो हो तुम, वो मेरी ममिया सास हैं। गुड़िया के पापा के मामा नायब तहसीलदार थे सो उनकी पत्नी सब जगह तहसीलदारनी ही कही जाती थीं।" "अच्छा भाईसाहब हमाई बुआ के भाँजे हैं, फिर तो आप नज़दीकई के नातेदार भए हाय कित्तो अच्छो लग रहो आज", चहकती हुई-सी वह मेरे पास आ खड़ी हुई तो मैंने अपने से सटा लिया और पूछा, "नाम तो बता दो अपना नातेदारनी, भले ही तुम सेग में बड़ी हो पर हम तो नाम ही लेंगे, हमें तो बिलकुल अपनी बहन ओमा साई लग रही हो।" "हाँ, हाँ जीजी तुम तो नामई लियो, लता है हमाओ नाम लता," वह लड़ियाती हुई मेरे सर को पकड़ कर अपनी कमर से सटाकर कहने लगी। "बैठ जाओ लता, अब चाय तो पीने दो", हँसते हुए कहकर मैंने उसे पास ही पलंग पर बैठा दिया।

"बाईसाहब बच्चों के लिए दूध भिजवा दूँ", अतरसिंह ने पूछा। "हाँ, हाँ भेज दो और मलाई जादा सी डार दियो,भली।" लता ने अर्दली को हिदायत दी। "दूध तो हो रहा होगा तुम्हारे यहाँ?" मैंने हमारे यहाँ का पूछा जाने वाला शाश्वत प्रश्न पूछा। "हाँ, हाँ जीजी, मुलक (बहुत) दूध है दो-दो गैया हैं, तीन-चार भैंसें हैं। बच्चन को तो अब झेयीं से दूध जाएगो", उसने बड़ी ठसक दिखाते हुए जवाब दिया। "नहीं लता, दूध तो वहाँ भी पास में मिल ही जाएगा, मैंने तो वैसे ही पूछा।" "लेयो घर में दूध होत भए मोड़ी-मोड़ा मोल को दूध पिएँगे? तुम ख़ूब

हो जीजी। दूध तो अब बच्चन को मौसी ही पहुँचाएगी तुम निसचिंत रहो", उसने मेरे हाथ पर हाथ रखते हुए मुझे निरुत्तर कर दिया।

"बाईसाहब, भाईसाहब पूछ रहे हैं कितेक देर है", "अतर सिंह ने बाहर से पूछा तो मैं इनका इशारा समझ गई।

"चलूँ लता, फिर आऊँगी", कहते हुए मैं उठ खड़ी हुई।

"तुम्हें मेरी सौं जीजी, खाना खाके जईओ", लता ने मेरा हाथ पकड़ लिया।

"नहीं, आज नहीं लता, आज इन्हें कुछ और काम है। थोड़ा जल्दी है, अब तो आना-जाना लगा ही रहेगा फिर किसी दिन खाएँगे।" लता के कंधे पर आश्वासन का हाथ रखकर,पर्स उठाकर मैं चल दी।

"तो बच्चन को खीर-पूड़ी तो हम अतरा से पठा ही देंगे। तुम कहाँ परेसान होगी आज ही तो आयी हो।" वह मेरे पीछे-पीछे कहती हुई चली आ रही थी।

बाहर निकली तो देखा तीनों बच्चे कार में बैठ चुके हैं। ये और जगतपालसिंह गाड़ी के गेट के पास खड़े होकर बातें कर रहे हैं। मुझे आता देख जगतपाल गेट छोड़कर एक ओर हट गए। मैंने भी साड़ी का पल्ला माथे तक खींच लिया। लता बरामदे में ही रुक गई थी। डिप्टी साहब ने मुझे नमस्ते किया तो उन्हें हाथ जोड़कर मैं भी गाड़ी में बैठ गई।

"हाय राम, कितना एज डिफ़रेंस है, शरम नहीं आई। इसे ज़रा-सी बच्ची की ज़िन्दगी ख़राब करते।" मैं जैसे भरी बैठी थी, सो गाड़ी के फाटक पार करते ही गुड़िया के पापा से ही लड़ने लगी।

"शरम क्या करेगी, ये तो क़िस्मत है अपनी-अपनी, दोनों बहनें हैं", इन्होंने चुहल करते हुए जवाब दिया।

"मरी कैसी बहन? जानके फूल-सी बच्ची क़साई के सौंप दी", मेरा रोष बढ़ रहा था।

"चुप करो बच्चों के सामने, बाद में सब बताऊँगा", इन्होंने वह बात ख़त्म कर दी और हम बच्चों को घुमा-फिराकर घर आ गए। घर पर अतरसिंह दो बरनियों में खीर और एक पीतल के कटोरदान में पूड़ियाँ लिए मिला। "ठाठ हैं भई तुम्हारे तो", कहते हुए ये मेरी ओर हँसकर भीतर चले गए।

ऐसे मिली थी मुझे मिसेज़ जगतपाल यानी मेरी लता, मेरी वह कोमल छुईमुई-सी लता कब मुरझाकर पीली पड़ गई पता ही नहीं चला। मेरी आँखों से आँसू रुकते न थे उन बातों को याद कर-कर के। जितनी सुन्दर थी उतनी ही भोली। तीन बच्चियों की माँ होकर भी दुनियादारी कुछ जानती ही न थी। उसकी कम उम्र और सुन्दरता के कारण जगतपाल को न जाने क्या कॉम्प्लेक्स था कि न उसे कहीं जाने देता, न किसी से मिलने देता। यहाँ तक कि अतरसिंह के अलावा कोई अर्दली भी भीतर नहीं आ सकता था।

एक दिन दोपहर में हमारे घर आई तो मैं मैक्सी पहनकर लेटी थी। "ए जीजी तुम जे का फ्राक पहने हो?" अचम्भित वह पूछने लगी। "फ्राक नहीं, मैक्सी है, तुम भी पहना करो बहुत आराम मिलता है और साड़ियाँ भी ख़राब नहीं होतीं", मैंने उसे ज्ञान दिया। "अरे हम कहाँ, साहब कहाँ पहनने देंगे", वह रुआँसी-सी हो गई। "क्यों नहीं पहनने

देंगे? रात में पहनना। ख़ूब खुश होंगे।" मैंने लता के गाल मसल दिए। तीन-चार दिन बाद ही उसका फ़ोन आया, "जीजी मिक्सी लेने कब चलेंगे?" "मिक्सी? मिक्सी तो ग्वालियर में अच्छी मिलेगी लता, गुड़िया के पापा जब मीटिंग में ग्वालियर चलेंगे तब चल देंगे, ले आएँगे।" मैंने जवाब दिया। "नहीं दीदी हमन दोई चलें हमने जियासाब से पूछ लयी है कही है कि बिनई के संगे ले आइयो", लता ठुनकने लगी तो मैंने टाला, "हाँ चलेंगे।"

बाद में पता चला वह मैक्सी को मिक्सी कह रही थी और मैं किचन में काम आने वाली मिक्सी समझ रही थी। हम और बच्चे बहुत दिन तक हँसते रहे थे, इस बात पर। इतनी सीधी थी मेरी लता।

बच्ची ही थी लता, जब बड़ी बहन ने चौथे जापे में सहारा देने के लिए बुलाया था। तीन लड़कियों के बाद चौथी डिलीवरी थी जिसमें सयानों ने पक्का लड़का ही बताया था। ऊँचे-नीचे पर पैर पड़कर कुछ गड़बड़ न हो जाए सो जगतपाल चौदह साल की साली को जीप में बैठाकर के आए थे। वैसे तो हमारे यहाँ कुँवारी लड़कियाँ नाते-रिश्तेदारी में कहीं भेजी नहीं जातीं पर करतब-करिया थानेदार दामाद के रुआब के आगे ससुराली बेचारे हाथ बाँधे खड़े रह गए। लता ने बहिनोतियों को नहलाना-धुलाना, बहन की कंघी-चोटी करना, जीजा को थाली परसकर देना इत्यादि ऊपर के सब काम सम्भाल लिए। जगतपाल की बेटियाँ तो वर्दी वाले पिता के सामने आने में भी डरती थीं, लता थी गाँव की अल्हड़ किशोरी सो कसूमल घाघरा पहने, लम्बी-लम्बी दो चोटियाँ किए ऊँचे-पूरे जीजा के आगे-पीछे घूमती तो घर में उजाला-सा हो जाता। बहिन की बड़ी बेटी ही ग्यारह साल की थी तब लता भी बेटी-सी ही थी। उसके लिए तो क्या शक करती और निश्चिंत होकर लेटी रहती।

"जीजा शराब तो रोज ही पीयत थे, जीजी बासे दवाई कहती थीं।" लता बताती थी, "एक दिना का भयो कि जीजी परीं अपने कोठा में, हम रेखा दूसरे कोठा में। आधी रात के जीजा ने हम थपक्या के जगाए, हम जाने कछु काम हुईए दो उठके बिनके पीछे चले आए। बिनने तो अपने कमरा में ले जाके हमायी अंकवार भर लयी। हम समझ पाते तोनों तो सब कछु हो गओ जीजी", बताते-बताते लता रोने लग जाती थी। "अपनी जीजी से कछु मत कहियो नहीं तो जे देखी है? कमर में लगी पिस्तौल पर हाथ रखकर जीजा कहते थे तो हम बहुत डरप जाते थे जीजी।" लता का चेहरा पीला पड़ जाता था अब भी उन दिनों की याद से। अनुभवी बहन की आँखों ने जल्दी ही सब भाँप लिया और एन जच्चगी के पन्द्रह दिन पहले ही लता अतरसिंह के संग मायके पहुँचा दी। जगतपाल मना करता रह गया पर बड़ी ने एक न सुनी। "हमाए जीजी महीना नहीं भओ थो सो बैसे ही डरपाने थे रस्ता भर रोअत गए।" "का भओ लाली अपने घर जाबे में इतेक काए रो रयीं", अतरा ने पूछी थी तो अपने-आप को रोक न पाई जीजी और पेट पे हाथ धरके अतरा से कही कि, "दादा जियासाब से कहियो हम कुँआ में गिर मरें इतैं कछु गड़बड़-सी लग रही है", अनुभवी

सिपाही नादान छोकरी की नज़र भाँप गया और लता के सर पर हाथ रखकर बोला, "चिन्ता जिन करो लाली हम सब ठीक कर देहें अकेले जे बात और काऊ से ना कहियो।" "पन्द्रह दिन बाद जीजी के चौथी बिटिया हुई जे सीमा। जीजा के भी सहन की सीमा ख़त्म हो गई।" लता रोती जाती थी। रात-दिन जगतपाल बस पीने ही पीने में लग गया न नवजात को देखा न सद्यःप्रसूता पत्नी की खोज-ख़बर ली। एक दिन पीते-पीते अतरसिंह से कहने लगा, "अतरा घोंटून को सब तेल निकर गयो सर्चिंग में, तब जे नाम भओ, जे जैजाद बनी। सो सब बेकार है एक बारिस ना उपजो जा बूँद से।"

"का पतो हजूर खराबी खेत में ही होय, जान की माफ़ी हो तो एक बात कहें चाहत हूँ हजूर", हाथ जोड़े अतरा ने गर्दन नीची कर ली। "मत कह अतरा, दूजो ब्याह नहीं कर पाएँगे। अब वो जमाना नहीं रहा कहीं शिकायत हो गई तो बारिस तो ना मिलेगो नौकरी और जाएगी, वैसे तो हमारे बाप ने भी तीन बेर मौर बाँधे पर क्या करें नौकरी की मजबूरी है।"

"हजूर बूँद तो शायद बिना ब्याह के ही पड़ चुकी है, ऐसे सम्बन्धों में बेटा की ही माटी बनती है इतिहास गवाह है", अतरा एक साँस में कह गया हिम्मत करके। अतरसिंह साहब का पुराना वफ़ादार सिपाही, जगतपाल की पहली पोस्टिंग से ही हर तबादले के साथ ही उसका भी तबादला हुआ। क्या नौकरी क्या घर-गृहस्थी, साहब से भी ज़्यादा साहब का राज़दार।"

"ऐसा क्या?" साहब दंग रह गए थे।

"तबही ससुरी ने एन जापे के पहले जबरयी मोड़ी पठा दयी थी। तोए कैसे पतो?" जगतपाल को सब समझ में आ रहा था।

"बस हजूर अब और ना कहलवाओ, दूसरो कोऊ जोते तासे पहलें अपनो खेत रखा लो मैं तो जेई कह सकत हों" और अतरा बाहर निकल गया।

"जीजी के सीमा भयी बैसाख में और जेठ में हमाओ ब्याह बन गयो, सगाई तो दो साल पहले हो ही चुकी थी सांगोली गाँव में", लता बताती थी। जीजी सोहर में होने से आने की नहीं थीं, रेखा औरन को भैया जाके ले आए थे। टीका के दिना जीजा दो जीपन में फ़ोर्स भर के आ गए। सबने समझी सर्चिंग में से आ रहे होंगे सो फ़ोर्स की और जीजा की ख़ूब ख़ातिर करी। आधी रात के भाँवरों की बेला लाडी मंडप के नीचे आई वहीं से सफ़ेद खादी पहनी हल्दी लगी लाडी जीजा ने हाथ पकड़ के मंडप में से खेंच लयी। बारातियों ने बन्दूक़ें तान लीं। "लाडी के मौर हमारा बँधा है तूने हाथ कैसे लगा दिया, पुलिस वाला होगा सो होगा चीर के दो कर देंगे", दूल्हे का ताऊ गरजा तो घराती-बाराती सब जगतपाल पर चढ़ बैठे। एक हाथ से लता को सम्भाले और एक हाथ से पिस्तौल तानकर जीजा ने ऐलान कर दिया, "इसके मेरा गर्भ है भाँवरें मैं लूँगा।" सब हक्के-बक्के रह गए, थू-थू करती हुई बारात लौट गई। बाप ने मजबूरी में हमायी भाँवरें दुहाजू बर को डलवाईं। और रातोंरात जीजा जीप में दुल्हन को उड़ाकर बंगले में ले आया। इधर जीजी ने हमें दरवाज़े पर

देखा तो ग़श खा गईं, हाय मंडप के नीचे से लाडी खींच लाया, बैरी ये तो भगवान को भी नहीं डरा। मन-ही-मन विलाप करती हुई पहली पत्नी और चार बच्चों की माँ ने सौतन के रूप में बेटी की उमर की छोटी बहन को आरता करके घर के भीतर लिया। सत्यनारायण की कथा कराके नई बहू अपने कुल में मिलाई। खून के घूँट पीकर पलका पुजवाया और पति की रात जगाई। भले घरों की औरतों को अपने आदमियों की मनमानियाँ सहन करने के अलावा और ठौर ही कहाँ है? वह भी जगतपाल जैसा नामी अफ़सर। पूरी बिरादरी में जिसकी तूती बोलती थी, उसकी शिकायत करती भी तो किससे। चार लड़कियाँ तो हो चुकी थीं, कब तक आस करता, दूजा ब्याह तो करता ही। बड़ी बहन सोचती पर जब लता की हिरनी-सी आँखों पर काली घटा-सी छाई लम्बी-लम्बी बरौनियाँ देखती तो कलेजा फट जाता, कैसी कच्ची कली कुचल दी निर्दयी ने, निपूता ही मरे। हम तो दोनों बहनें भाग्य का लिखा भोग लेंगी पर तू कोढ़ी हो जाए हत्यारे। ऊपर से हँसती-बोलतीं जीजी मन-ही-मन कोसतीं। "हम क्या जानतीं थीं तब जीजी", लता रो-रोकर अपना नाक-मुँह सब लाल किए हुए कहती तो माटी के पुतले के भी आँसू निकल जाते मैं तो फिर औरत थी "जियासाब रोज़ नाश्ते में रबड़ी-जलेबी मँगाते और अपने हाथों से मुझे खिलाते थे, पहन-ओढ़कर चलतीं तो उनकी आँखें ठिठक जाती थीं हम पर।" एक दिन कहने लगे, "लता तेरी जीजी अब अम्बाह रहेगी रेखा औरों को लेकर, वहाँ कोठी बनवा रहा हूँ। यहाँ दो-दो रहोगी तो शिकायत हो जाएगी।"

" काहे की शिकायत, हम तो ब्याह के आई हैं?" लता अचम्भे में थी,

" दो शादी करना क़ानून के ख़िलाफ़ है। शिकायत हो गई तो नौकरी चली जाएगी लता रानी", लाड़ लड़ाते हुए वे बोले।

"तो जीजी काहे जाएँ? बे तो घर की मालकिन हैं, हम ही चले जाएँगे। वैसे भी हमें इतें घर की बहुत सुत्त आती है," हमने कहा है,

"तेरे बिना तो मैं जिऊँगा कैसे मेरी पद्मिनी? जाएगी तो वो ही।"

"ऐलान करते हुए जियासाब खड़े हो गए और वर्दी पहनने लगे। पता नहीं दोऊ मानसन में क्या बात हुई कि तीन-चार दिन बाद ही जीजी अपना सामान बाँधने लगीं। समझ तो मैं गई पर बोली कुछ नहीं। शाम को जब जे इलाके में निकल गए तब जीजी मैं अपने कमरा में बुलाई, "सुन लता मैं तो अब रहूँगी भत्तपुरा (जीजा का गाँव) तू और रेखा यहाँ रहना। रेखा पढ़ने जाती है ना और तुझे भी सहारा रहेगा।" जीजी के बिना इस बंगले में रहने की कल्पना से ही बहनजी हम रोने लगीं सो जीजी ने गोद में ले लीं।, "रो, मत, लाली, मेरे ब्याह पे तो तू होनहार थी, भौजी (हम अपनी माँ को भौजी कहते थे) ने बैठ के भात पहना था, ठाड़ी भी नहीं हो पाती गर्भ भार से। गौने तक तुझे मैं ही राखती थी। तू तो मुझे रेखा से भी बढ़कर है लता। पर मैंने ही अपने हाथन तेरे करम फोड़े हैं बेटा, ना तू मैंने बुलायी होती ना जे सब होता।" जीजी भी रोने लगी थीं।

"जिन रोओ जीजी, मैं ही जाऊँगी भत्तपुरा, मेरी भी तो ससुराल है वहाँ। तुम यहीं रहो। तुम्हारे बिना मैं कैसे रहूँगी जा पिंजरा में जीजी—?" लता फूट-फूटकर रोने लगी थी।

"संभाई कर (धैर्य रख) लता, अब रोने से कुछ नहीं होने का, वैसे भी तुझे दिन चढ़े हैं, तेरा रोना ठीक नहीं। अपनी जीजी का कलंक तू ही मिटा दे बहिन, एक वारिस दे दे इसके कुल को। भत्तपुरा तू रह नहीं पाएगी बिट्टो, ससुराल का रहना सूली का चढ़ना। उस पर मरद तेरा यहाँ रहेगा नौकरी पे। नहीं तू कैसे रहेगी। मेरी बात और है मैं तो अब बहुत दिनन की आई गई हो गई ससुराल में। वैसे भी अभी तो बैरी के नैनन बसी है तू, अभी तुझे नहीं छोड़ेगा। जाना तो मुझ को पड़ेगा लता, आदर मान से चली जाऊँ, उसी में नीकी है। रो जिन, तू बात समझ ध्यान से, आओ जात है वो अभाल सो बोल-बतरा भी नहीं पाएँगी, सबेरे मै कढ़ जाऊँगी।" बड़ी बहन ने सब बात छोटी से कही–

"ले जे तो तू कुंची संभार", जीजी ने अपनी कमर से चाबियों का गुच्छा निकालकर मेरे हाथ पर रखा तो मेरे आँसू फिर आ गए। चुपचाप नज़र नीची कर ली।

"संभार, जब बेटा की माटी ना जनी, तो जे कुंची तो कोऊ ना कोऊ लेती ही, तू तो फिर भी माँ-जाई ही है। रुपैया-पैसा का बहुत ध्यान रखता है जे, सो बिना पूछे पैसा मत दीजो काऊए। साग-भाजी सब सामान अतरा लाता है सो बो जाने और अतरा जाने तोए कछु मतबल नहीं है। बो तो जितनी रक़म दे बितनी तैने संभार के धर दी और जब माँगे उठा के दे दी बस इतनो ही काम है तेरो। बैसे कमी तोकुँ कछु नहीं रहेगी, तोये तो बैरी हथेली पे राखेगो। बैसे बुरे-भले तो हमसे भी कबहुँ नहीं बोलो। फिर भी अपने काम से काम रिखयो बैसे मैं बाई (सास) को पहुँचा दूँगी दिना पूरे होन लगेंगे तब।" बड़ी ने एक-एक बात छोटी को समझाई।

"जीजी तुम्हाओ खर्चा फिर?" हिचकिचाते हुए लता ने पूछा।

"अरे मोकूँ कहा कमी है? पक्की एकचकी पचास बीघा ज़मीन है, बटिया से करवाऊँगी और ठप्पे से रहूँगी। दाल दरिया सब तोकूँ पहुँचाऊँगी।" जीजी ने लता की ठुड्डी छूकर लाड़ करते हुए कहा तो उसके आँसू बह चले।

"सबेरे जीजी बेग, अटेची, गठरियाँ, पुटरिया सब लैके राखी, लाली और सीमा के संगे जीप में बैठीं। जियासाब खुद ड्राइवर की जगह बैठे और बग़ल में जीजी पीरी धोती लाल चादर ओढ़े गोद में नवजात को लयें साक्षात लक्ष्मी लग रही थी। अपनो पूरो ज़ेवर पहन गईं थीं। "तेरो चढ़ाओ बनवावे तेरो भरतार, मैं क्यों छोड़ूँ?" पहनते वक़्त मुझसे ठिठोली कर रही थीं। भर्रर करके जब जीप चली तो मैं गश खाके गिर गई वहीं द्वार पे। अतरा ने उठाके भीतर पलका पे लेटाई थी।" ये सब बताते-बताते लता आँसुओं से पल्लू भिगा देती थी। चम्बल की माटी नदी के पानी से ज़्यादा भीगी है या यहाँ की बहू-बेटियों के आँसुओं से? ये विधाता भी नहीं बता सकता, अपने कलेजे के टुकड़ों से फ़ौज और पुलिस को निरंतर जवानों की पूर्ति

करने वाली इन वीर प्रसूताओं के आँसू सदा से एक हाथ लम्बे घूँघट में बहे हैं गुपचुप। मर्यादा तलवार लेकर इनकी सिसकियों पर भी पहरा देती रही है सदा से। इनकी व्यथा तो कोई इन जैसी ही जान सकती है।

"मौसी, मम्मी अब कबहुँ नहीं आवेंगी?" सबेरे रेखा ने पूछा।

"आवेंगी क्यों नहीं बेटा? छोटी लाली की पूजा देबे गई हैं महीना- पन्द्रह दिना में आ जाएँगी", लता ने बच्ची को बहलाया।

"तो फिर हमसे काए कह रही थीं, अच्छे पढ़ियो मौसी के संगे ही रहबे करियों हम अब कबहुँ ना आवेंगे?" रेखा रुआँसी होकर बताने लगी तो लता को भी रोना आ गया।

तीन-चार दिन बाद ही अतरसिंह एक नाईन को ले आया, "छोटी बाईसाहब जे ऊषा, रेखा बहिनजी के संगे रहेंगी, तुम्हाए हाथ-गोड़े की करबे करेगी।" लता समझ गई यह उसने अपने साहब के हुकुम से किया है क्योंकि रेखा के पास लता के सोने से जीजा को भारी असुविधा हो रही थी।

"छह-सात महीना बाद जे मधु भयी तो साहब स्याह पड़ गए। इतने ठठकरम करके भी फिर बिटिया? पर बोले कछु नहीं बल्कि घी की चार टीनें धरके उषा को ताईद कर गए कि कछु कमी ना रहे जच्चा की खबाई-पिबाई में। मधु से हमें और रेखा को एक खिलौना मिल गया था जीजी", लता के आँचलों में दूध उतर आता था अपनी पहलौठी की जच्चगी को याद करके।

"एक बेर हमने रात के इनसे कही कि जीजी को बुला लेयो मधु को देख जाएँगी," सो जे बोले, "वो अब नहीं आएगी, इतेक बेर कह लयी पर नहीं मानती तो क्या करें?" और जे करवट बदल के सो गए। हम तो ससुरार-मायके सबसे कट के रह गए थे, नाते-रिश्तेदारी में सब जगह जीजी ही जाती थीं। हम न तो कहीं जाते थे न यहाँ कोई आता था। हम तो बस मनबहलाब को खिलौना रहे जियासाब के, पटरानी तो जीजी ही रहीं", ज़मीन-जायदाद, ज़ेवर, मकान सब बड़ी के ही क़ब्ज़े में रहा तो सब जगह पूछ-परख उसी की रही। औरतें मुँह पर पल्लू रखकर कहती थीं, "बेचारी ने बहन बुलाई जापे में, जीजा-साली में ऐसों लफड़ा परो कि बाने तो सब राजपाट ले लए जे बेचारी यहाँ गाम में धूल फाँक रही है। जीजी हम जेयी नहीं जान पाए आज तक, कि हमारी गलती क्या थी किस बात की सज़ा भोगी हमने सब जनम?" अपनी मछली जैसी आँखें मेरे चेहरे पर टिकाकर लता पूछती थी तो निरुत्तर होकर मैं उसे सीने से लगा लेती थी बस। एक-एक करके तीन बेटियाँ हुईं बेचारी के, कम उम्र से ही गर्भ धारण करने से अंतिम डिलीवरी में यूट्रस ही फट गया और सबसे छोटी पुत्री का नाम अंतिमा रखकर जगतपाल ने पुत्रप्राप्ति की लालसा का अंत किया। बड़े भाई के बेटे प्रदीप को गोद ले लिया, गोदनामे में भी गाँठ जोड़कर बड़ी ही बैठीं बराबर से, सो बेटा-बहू भी उन्हीं के रहे। अति का रूप बुरा होता है, हमारी अम्मा कहती थीं। सोई बेचारी लता के संग हुआ रूप ही उसका दुश्मन बना और तो और बड़े दामाद ने भी मौक़ा ताड़कर एक बार लता को पकड़ लिया था। बड़ी मुश्किल से

खुद को बचाया। "साहब को पतो पर जाए तो दामाद के प्राण लेके रहें", जीजी लता कहती थी।

सुबह से ऐसे ही लेटी-लेटी सब बातें याद कर रही हूँ। गुड़िया के पापा कब आ गए, पता ही नहीं चला।

"मिसेज़ जगतपाल नहीं रहीं, मैं हो आऊँ क्या?" चाय देते हुए मैंने इनसे पूछा।

"कब? अरे वो तो बहुत छोटी थी बेचारी", ये कहने लगे।

अभी दो-तीन दिन पहले ही, लखनऊ में मधु के पास।" कैन्सर हो गया था ना", मैंने बताया।

"अरे, बिलकुल चली जाओ तुम, रवि को ले जाना, कब जाना है, मैं ड्राइवर को कहे देता हूँ।"

"कल ही चली जाऊँ? परसों फिर गुरुवार है", मेरा मन अब यहाँ लग ही नहीं रहा था।

"हाँ, हाँ बिलकुल", कहते हुए ये उठकर चले गए।

मैं अपने भतीजे रवि के साथ मधु की कोठी पर लखनऊ पहुँची तो दोपहर हो चुकी थी। सड़क तक कुर्सियाँ लगी थीं, जाने कहाँ-कहाँ के रिश्तेदार बैठे थे। सो मैंने गाड़ी से उतरकर घूँघट कर लिया। "बुआजी हैं, ग्वालियर वाली", रवि ने जाने किससे कहा तो एक लड़का आगे-आगे चलता हुआ हमें कोठे के भीतर ले गया। "मधु भाभी बुआजी हैं ग्वालियर वाली", बेचारे ने जैसा सुना वैसा ही परिचय ज़ोर से आवाज़ लगाकर भीतर दे दिया और वापस लौट गया। मधु मेरे पास आई तो मुझे पहचानकर मुझसे लिपटकर ज़ोर से रोने लगी, "मम्मी— तुम्हारी प्यारी जीजी आ गईं।" सुनकर बैठी हुई सभी औरतें सुर मिलाकर रोने लगीं। मैं भी वहीं बिछी जाज़म पर बैठ गई। थोड़ी देर बाद कुल्ला करने को पानी आया। आँगन में कुल्ला करके मैंने मधु से पूछा, "वो तो आगरा रह रही थीं ना, यहाँ कब आईं?" रिटायर होकर जगतपालसिंह ने कोठी आगरा बनाई थी, ये दोनों वहीं रह रहे थे। सब लड़कियों की शादियाँ उन्होंने अच्छे ठिकानों में की थी। "मौसी पापा के बाद कोठी पर तो प्रदीप दद्दा के लड़का-बच्चा रहने लगे थे। मम्मी का इलाज लखनऊ ही चल रहा था तो हम यहीं ले आए थे। ऑपरेशन तो पापा के सामने ही हो आया था। अभी वो फोड़ा फिर से उठ आया था। दिखाते-भराते तब तक तो चल ही दीं।" मधु ने बताया तो मैंने जवाब दिया, "लता को ब्रेस्ट कैन्सर हुआ था तब तो मैं देख गई थी आगरा। फिर पता ही नहीं लगा", इतने में पास बैठी एक घूँघट की हुई बहू ने मेरा हाथ मसका। इशारा समझ कर उसे वह गले से चिपटा ली, "बुआजी हम सीमा रूपपुर वाली, मधु जीजी की दोरानी (देवरानी)", उसने कान में फुसफुसाया तो मुझे याद आया रूपपुर में मेरी काकी का मायका है। उनकी एक भतीजी मधु की ससुराल में ब्याही थी। "हाय बैरिन कैसा भरा पूरा उपबन छोड़ गई", मैंने हूका किया तो सभी औरतें फिर रोने की आवाज़ करने लगीं, "प्रदीप ने कोठी पर क़ब्ज़ा करके बिडार दी थीं सो यहाँ ले आए थे। बुख़ार में डरीं-डरीं मर गईं।" उसी शोर में सीमा

ने मुझे पूरी बात कान में कह दी तो मैंने सर पर हाथ फेरते हुए उसे अपने से अलग कर दिया।

"चलूँ बिटिया, हिल्ले सों रहियो तुम सब बहनें बेचारी नेक उमर में बिना बाप महतारी की हो गईं", मैंने मधु के सर पर हाथ फेरते हुए, कहा। "ऐसो मत कहो बहनजी, बाप महतारी कोनके सब जनम रहत हैं भरो-पूरो परिवार हैं। मोड़ियन को कहाँ कमी है", एक बुढ़िया सफ़ाई देने लगी। "हाँ सो तो सच है पर माँ के आगे के भात-पछन की बात और ही है, जे तो बिचारी तीनों ही रह गईं, जिनने अबहि का कहा देखो? पर बिटिया "माय मरे मौसी सी होय" चुनरी बदल बहन थी वो मेरी, बखत पे जब तुम याद करोगी, जैसो बनेगो तैसो लेके हाज़िर मिलूँगी बेटा इतेक ही कह सकत हूँ।" मैंने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। "हाँ मौसी तुमने हमें अपनी जानी तबही तो आयी हो इतेक दूर से", अबकी अंतिमा मेरे गले में बाँहें डाल सिसक रही थी। "बेटा बिलकुल मत रोओ, चली गई नीकी रही, जिन दो आँखन के बल पे राजरानी थी जब बेही ना रहीं तो उसकी तो कुढ़ना होनी ही थी। वो बेचारी कौन-सी मालकिन थी कि परिवार बाकी पनही उठाता।" मैंने जैसे अपना सारा आक्रोश इन शब्दों में निकाल दिया था और उठकर खड़ी हो गई।

मुझे आता देख रवि भी कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ और मेरे आगे-आगे चलने लगा, लड़कों ने उठ-उठकर पैर छूए-कुछ जो मान्य दामाद थे खड़े होकर 'राम-राम' करने लगे। मैं अपनी कानी उँगली को भी साड़ी के छोर में ढाँकने की कोशिश करती हुई जैसे-तैसे आकर गाड़ी में बैठी तो आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया।

"बुआजी चाय पीओगी?" रवि ने पूछा।

"नहीं, कहीं आगे ढाबे पर रोकना। हाथ-मुँह धोकर कुल्ला करूँगी, दम-सा घुट गया मेरा तो", मैंने कहा।

"आगे यूपी गवर्नमेंट का डाक बँगला है, वहाँ रुकवाता हूँ। आप रेस्ट कर लेना थोड़ा," रवि मेरी परेशानी समझ गया था।

डाक बँगले में फ्रेश होकर चाय पीकर थोड़ा ठीक-सा लगा तो फिर हम गाड़ी में बैठे। "बुआजी ये तो छोटी वाली थीं ना, बड़ी और डिप्टी साहब तो शायद पहले ही——?" रवि जानना चाह रहा था। "हाँ बेटा, सब पहले ही मर-मरा गए, ये तो मुझसे बीस साल छोटी थी। ये भी चली गई।" मैंने उसाँस भरकर कहा। "डिप्टी के भाई-भतीजे कोई नहीं क्या जो दामाद के घर में मरीं?" रवि को भी अचम्भा था सबकी तरह। "बेटा, भाई-भतीजों से ही गुज़र होती तो आदमी नाठ को क्यों रोता? सब हैं। सब लेने के ही होते हैं, करने को तो अपना ही अंस होता है बेटा। बिटिया है भले ही, पर किया तो मधु ने ही ना। वो तो होशियार आदमी थे जगतपाल, सो पक्की लिखा-पढ़ी करके प्रदीप का गोदनामा कर गए नहीं तो ज़मीन-जायदाद पे लट्ठ और चला रहे होते भाई-भतीजे तो।" मेरा गला फिर भर आया।

"ठीक है बुआजी, आप सो जाओ, मैं गाड़ी दबवाता हूँ", रवि ने कहा तो मैं सीट पर सर टिकाकर सो गई। ❑

कहानी



श्रद्धा श्रीवास्तव

फ़ेयरवेल के बाद

वह समझ नहीं पा रही थी कि यह कैसा समय आ गया उसके जीवन में। सब कुछ ठीक चल रहा हो फिर अचानक एक अंधा मोड़..। हालाँकि यह समय, समय पूर्व बुलाया उसने ख़ुद है। क्या उसके भीतर कोई पछतावा घर बना रहा है? घर से बाहर खुली हवा में साँस लेने के अहसास को जानते-समझते हुए भी वह चलते-चलते सोच रही है। सोचते-सोचते चल रही है। स्कूल कैंपस बहुत बड़ा है। मेन गेट से अपनी बिल्डिंग 'शिखर' तक, जहाँ उसकी क्लास है, आते-आते चार-पाँच मिनट गुज़र ही जाते हैं। श्रीकांत उसे रोज़ पौने आठ बजे सुबह मेन गेट तक छोड़ते हैं। वह श्रीकांत को लेकर सुबह-सुबह बहुत प्रसन्न रहती है। बाक़ी के समय नहीं क्योंकि बाक़ी के समय वे अपना काम उससे करवाते। "वत्सला, एक कप कॉफ़ी बनाओ। वत्सला, आज मेरा दोस्त आ रहा है डिनर पर...." उसे श्रीकांत का सब काम करना पड़ता है। उसका अपना एकांत उसे मिलता नहीं लेकिन हर सुबह स्कूल तक छोड़ने का काम वे उसके लिए करते हैं। बस से स्कूल जाना हो तो बीस मिनट पहले निकलो, बस स्टॉप पर इंतज़ार करो। सुबह के उस बीस मिनट की क़ीमत हर कामकाजी महिला समझ सकती है। तब श्रीकांत को देखकर प्यार-भरी मुस्कान वह बिखेरती है।

मुस्कान उसका स्थायी भाव है। लोग इस विशेषता को उसे बताते भी हैं। यह सब उसे ख़ुशी से सराबोर करता है। ऐसा वो सायास नहीं करती। यह सब उसे प्रकृति-प्रदत्त है।

किसी ने उससे कहा था, "वत्सला तुम सबकी प्रिय हो। असाधारण टीचर हो, उसको परिभाषित नहीं किया जा सकता। तुम टीचिंग कभी मत छोड़ना।" इसके पीछे

सम्पर्क : ई-मेल : shraddha.kvs@gmail.com

के कारणों को पूछें तो उसके पास ठीक-ठीक कोई जवाब नहीं है। इन वाक्यों में न जाने क्या-क्या घुला था। शायद एक प्यार भी जो भय, सिहरन, थरथराहट और न जाने क्या-क्या भर देता है। क्यों वह इस साधारण से वाक्य को नहीं भूल पाती? यह जगा गया था। ऐसा जागरण जो खुशनुमा कर दे, जीवनदान दे दे। पता नहीं कैसे इन वाक्यों ने उसे अवसादमुक्त कर दिया। शायद इसीलिए वह इन्हें कभी नहीं भूलती।

वह यह सब याद करते, विचारते अपनी बिल्डिंग 'शिखर' की ओर बढ़ रही है। वह गुलमोहर के बड़े-बड़े पेड़ों के नीचे से गुज़र रही है। यह अप्रैल का महीना है। गुलमोहर के फूलों की लालिमा उसके चेहरे पर आच्छादित है, जो उसे और ख़ूबसूरत बना रही है।

वह सोच रही है कि आज के बाद अनंत अवकाश शुरू होने वाला है जो विशाल दुनिया से उसे परिचित कराने वाला है। एक बँधी दिनचर्या के कारण वह घर और स्कूल तक सीमित थी। उसे कितना सारा वक़्त मिलेगा अपने लिए।

वह मुक्त होने जा रही है। बिल्डिंग की पहली सीढ़ी पर पैर रखते हुए उसने सोचा। स्थायी मुस्कुराहट उसके चेहरे पर थी।

कॉरिडोर से ही उसे स्टाफ़ रूम की पट्टिका दिख रही थी। स्टाफ़ रूम से मीठा-सा शोर सुनाई पड़ने लगा था। मीठा-सा इसलिए क्योंकि उसके स्टाफ़ की सारी शिक्षिकाएँ ख़ूबसूरत महिलाएँ हैं, जिनकी आवाज़ें बहुत मीठी हैं।

स्टाफ़ रूम की देहरी पर जैसे ही उसने क़दम रखा, एक समवेत स्वर उभरा– "वत्सला मैडम, वेलकम ....वेलकम..... !"

वह ख़ुशी से झूम उठी। पर ये क्या? दूसरे ही पल उसे सदमा-सा लगा। उसने सोचा यह उसका लास्ट वेलकम है। कल से वो हमेशा के लिए यहाँ नहीं आएगी। यह सब क्या हो रहा है उसके भीतर और क्यों हो रहा है? क्या यह कोई दुःख की सेंध है जो बेहद महीन छिद्रों से उसके भीतर समाती-सी लगती है।

अब अपनी विचार सरणी के प्रवाह में बहते रहना मुश्किल था। सारी शिक्षिकाओं ने उसे घेर लिया था। सबकी सब उसे प्यार से छू रही थीं, जैसे कोई फूल को छूता है।

उसने जब नौकरी से इस्तीफ़ा देने का विचार किया था तब उसके मन में ऐसा कोई ख़याल नहीं आया था कि उसे फ़ेयरवेल भी दिया जाएगा। या उसे इस तरह की औपचारिकताओं में फँसना होगा। कुछ-कुछ दुःख, कुछ-कुछ ख़ुशी और कुछ-कुछ असहजता में वह साँस ले रही थी।

नौकरी से इस्तीफ़ा देने के निर्णय को जब उसने अपने आत्मीयों से साझा किया था तो सब लोग उसे आश्चर्य से देखने लगे थे।

लगभग सबने पूछा था, "फिर क्या करोगी?"

तब तक उसने भी नहीं सोचा था क्या करेगी?

इतने प्रश्न किए थे लोगों ने और किसी का ठीक-ठीक जवाब नहीं था उसके पास। एक ने तो यहाँ तक पूछ लिया था, "अभी क्या सैलरी मिलती है आपको?"

उसने सपाट से जवाब दिया था, "यही लगभग सत्तर हज़ार।"

पूछने वाला बुरी तरह चौंक गया था। वह बहुत देर तक फटी आँखों से आश्चर्य से उसे देखता रहा, फिर उसने कहा, "जीवन में हर महीने सत्तर हज़ार रुपये के कम हो जाने का मतलब समझती हैं आप?"

जिस तरह सामने वाला उसके जवाब से चौंका था उसी तरह वह उसके प्रश्न से चौंक उठी। उसे लगा, उसका प्रश्न सही है पर दूसरे ही पल उसने सोचना शुरू किया, वह इन सत्तर हज़ार रुपयों का करती क्या है?

कुछ भी तो नहीं? ख़ास कुछ भी तो नहीं? शॉपिंग जाना उसे पसन्द नहीं। घूमने के लिए अवकाश नहीं। उसका अकाउंट श्रीकांत ही देखते-सम्भालते हैं।

इधर वह अपने अंतर्मन के भूलभुलैय्या में खोई थी, उधर उसकी विदाई की तैयारी पूरी हो चुकी थी।

साथ ही शिक्षिकाएँ तरह-तरह के प्रश्न कर रही थीं और वह जवाब भी दे रही थी, पर सब कुछ यान्त्रिक था। वह किसको क्या जवाब दे रही थी, उसे बिलकुल याद नहीं।

थोड़ी देर में उसके विभाग की दो शिक्षिकाओं ने उसे विशेष रूप से सजायी कुर्सी पर बिठा दिया। उसी में एक शिक्षिका ने विदाई का कार्यक्रम सम्भाल लिया। वह संचालन करने लगी पर वह न जाने किस मनःस्थिति में थी कि बारी-बारी से आने वाले शिक्षक साथियों ने उसके बारे में क्या-क्या कहा, वो उस पर अपने को केन्द्रित नहीं कर पाई। उसे इतना आभास हो रहा था कि सब उसकी तरह-तरह से प्रशंसा कर रहे हैं। वह अपने ही ख़यालों में डूबी थी। वह उस समय भविष्य का मानचित्र बनाना चाह रही थी। चित्र किसी तरह पूरा नहीं बन पा रहा था। या अनिश्चित भविष्य के ख़्याल उसे बुरी तरह परेशान कर रहे थे। सच पूछो तो वह अपने में ही नहीं थी।

जब उसे बड़ी-सी फूलों की माला पहनाई गई तब वह कितनी सुन्दर लग रही थी, यह उसे बिल्कुल पता नहीं। सबने कहा तब भी नहीं।

वह आइने में ख़ुद को जब भी देखती, भौतिक रूप से उसने ख़ुद को कभी ख़ूबसूरत नहीं पाया। फिर क्यों उसे लोग ख़ूबसूरत कहते हैं, वह कभी समझ नहीं पाई। बाक़ी के बारे में सोच कर वह गर्व से भर जाती है। गर्व तो उसे स्मृति में बैठ गए उन वाक्यों पर भी होता है जिसकी अंतिम कड़ी में था कि "...तुम टीचिंग कभी मत छोड़ना।"

और वही छोड़ने जा रही है। इस्तीफ़ा देते वक़्त ये कड़ी उसे याद क्यों न आई?

अन्यमनस्कता की अजीब छटपटाहट है यह।

वह अचानक अपने भीतर से बाहर

आई जब संचालन कर रही शिक्षिका ने ज़ोर से कहा, "अब मैं वत्सला मैम से निवेदन करती हूँ कि वे अपनी बात कहें, आइए वत्सलाजी।"

वह लगभग लड़खड़ाते हुए खड़ी हुई। बड़ी देर तक मौन रहकर भरे हुए कक्ष को देखा। उसकी थरथराहट जारी थी। वह तय करके नहीं आई थी कि क्या बोलना है, बोलना तो उसे बहुत कुछ था। बड़ी तेज़ी से उसके सामने सारे दृश्य नाचने लगे। उसे याद आया। टीचर के रूप में उसे यहाँ बहुत आदर और प्रेम के साथ बुलाया गया था।

"यह वर्षों पहले की बात है.... मैं अपनी बेटी को सर्वश्रेष्ठ शिक्षा देना चाहती थी। उसके पंखों को उड़ान देना चाहती थी। अच्छी शिक्षा और अच्छा स्वास्थ्य। मैं चाहती थी बेटी खेल का रोमांच भी महसूस करे। उस समय मैं एक छोटे शहर में नौकरी कर रही थी। एडमिशन की प्रक्रिया के तहत हमसे साक्षात्कार के वक़्त इस स्कूल के डीन ने बेटी का नाम पूछा जो उन्हें समझ नहीं आया क्योंकि वह नाम संस्कृत के एक शब्द का तत्सम था।

उन्होंने दोबारा पूछा, मैंने उच्चारण को दुरुस्त करने के लिए अपनी बेटी का नाम हिज्जे करते हुए दोहराया।

उनकी समझ नहीं आया तो मैंने उन्हें इस तरह समझाया ताकि उनके अहम् को ठेस नहीं लगे। मैंने देखा उनकी आँखें प्रसन्नता से विस्फरित हो गईं।

इस प्रकार के संवाद ने शायद अप्रत्यक्ष रूप से बता दिया स्कूल की क्या विशेषता है। निश्चित रूप से यहाँ एक खुलापन है जहाँ लीक से हटकर निर्णय लेने जाने के लिए लोग स्वतन्त्र हैं।"

यह सुनकर तालियों का तीव्र स्वर सुनाई पड़ा। जब तालियों का शोर रुका तो उसने फिर कहना शुरू किया–"डीन ने मेरे कुछ गुणों को भाँप लिया और पूछा आप टीचर हैं? कहाँ? मैंने उन्हें बताया, हाँ, केन्द्रीय विद्यालय संगठन में, और हिन्दी पढ़ाती हूँ। मैंने बताया मेरी साहित्य में रुचि है। उनकी प्रसन्नता बढ़ गई और उन्होंने मुझसे कहा कि क्या आप हमारे स्कूल में हिन्दी पढ़ाना चाहेंगी?

तब बात आई-गई हो गई।

मैं हतप्रभ! कुछ कहते नहीं बना तत्काल...।

बेटी को बोर्डिंग में छोड़कर लौटते हुए बारिश हो रही थी और रिमझिम-रिमझिम। और आँखों से भी अविरल और मैंने श्रीकांत से कहा– यहीं नौकरी कर लूँ क्या? श्रीकांत ने डाँटते हुए कहा था, "पागल हो, अपनी सरकारी नौकरी छोड़ोगी? पहले पेंशन की हक़दार हो जाओ। ऐसा ऊटपटांग ख़याल आया ही कैसे?"

फिर एक अंतराल के बाद आ ही गई।

इस स्कूल का इतना बड़ा आकर्षण था और बेटी का मोह कि मैं यहाँ आ गई। तब से चार साल गुज़र गए ..मैंने बहुत-कुछ सीखा। यहाँ शिक्षण के गुणों को

पनपते, बढ़ते और परिमार्जित होते देखा। पर अफ़सोस मुझे जीवन में कुछ और काम भी करने हैं, इसलिए जिससे मैं स्वयं बँधी थी उन बंधनों से मुक्त होना चाहती हूँ। इन चार वर्षों में अविराम पाए प्यार के लिए सबका हृदय से आभार!"

फिर तालियाँ बजती रहीं और उनका शोर बढ़ता गया।

मोबाइल पर श्रीकांत का फ़ोन आ गया था कि वे आ गए हैं वापस और पार्किंग में इंतज़ार कर रहे हैं। वह अपने उपहारों को दोनों हाथों में थामे स्कूल कैंपस को पार कर रही थी। उसे लगा उसके पीछे-पीछे कोई चल रहा है। अवसाद। वह घबरा गई। वह तेज़-तेज़ क़दम रखने लगी, तभी अचानक शरण्या दौड़ती हुई आई और उसे एक काग़ज़ का टुकड़ा पकड़ा कर हँसते-दौड़ते वापस हो गई।

उसे पढ़ने के लिए उसकी रफ़्तार धीमी पड़ गई। शरण्या को उसने पढ़ाया था। उसकी प्रशंसा में एक प्यारी-सी चिट्ठी थी।

उस चिट्ठी में एक ख़ास बात यह थी, उसने लिखा था, "मैं आपसे इतनी प्रभावित हुई कि हिन्दी में कविताएँ लिखने लगी ... आप में मुझे मेरी माँ दिखती है।"

पढ़कर उसके आँसू रुक नहीं पाए। वे झरझरा के आँखों से अनवरत् टपकने लगे। उसे लगा यह चिट्ठी उसका सबसे बड़ा हासिल है। वह अपने टपकते आँसुओं को अपनी हथेली में रोकने लगी, कि व्यर्थ न जाएँ।

अब अवसाद पीछे रुक गया था और वह आगे बढ़ती जा रही थी। पर फिर भी वह बार-बार उसकी ओर लपकने को तैयार हो रहा था। जब वह कार में आकर बैठी तो उसने पाया कि वह फिर से उसकी गिरफ़्त में है।

बिना कुछ बोले श्रीकांत ने कार स्टार्ट कर दी और वह रेंगने लगी। पर उसके अंदर अँधेरा-सा घिरने लगा और वही आवाज़ उठाने लगी ....उफ़्फ़!

उसने फिर अपने से कहा कि आगे उसे कुछ नहीं करना है, सिर्फ़ कहानियाँ लिखना, पीछे का कुछ नहीं सोचना है, कितने सारे प्रसंग हैं उसे सबसे साझा करना है। सिर्फ़ कहानियाँ कहना है।

यहाँ उसे कुछ राहत-सी महसूस हुई। पता नहीं कैसे यह ख़याल आया कि कहानियाँ भी तो सिखाती हैं, सीखने का सबसे उपयोगी टूल... कैसे वो सूक्ष्म अभिनय और संवाद-अदायगी कर अपने पाठ में प्राण फूँकती है। किस तरह वह फ़ैक्ट और फंतासी को घोलकर पाठ को रोचक बनती है। वह लिखेगी, कहानियाँ लिखेगी। वह क्लास में पचास-साठ बच्चों को पढ़ाती थी, पर उसकी कहानियाँ तो असंख्य लोगों तक पहुँचेंगी।

तभी कार ने रफ़्तार पकड़ ली। उसने देखा दूर तक जाती सड़क बहुत स्पष्ट दिखने लगी और खुला आसमान उससे मिलने लगा था। उसका अँधेरा पूरी तरह छँट चुका था। ❑

कहानी



विनीता बाडमेरा

एक दुनिया संवेदनाओं की

"किसी का अच्छा लगना कब ख़राब हो गया?" मैंने ख़ुद से पूछा। बार-बार पूछा। जवाब कहीं भी तो नहीं था। कातरता साफ़ चेहरे पर झलक रही थी। मन में उदासी पसरी थी। अपने ही घर में बैठा मेरा मन न जाने कहाँ भाग रहा था। आज से पहले तो कभी नहीं हुआ और अब उम्र के इस पड़ाव पर जब बिटिया दसवीं की परीक्षा देने वाली हो। मैं हैरान था अपनी ही स्थिति पर। कल रात को भी नींद नहीं आई। पत्नी बिल्कुल बग़ल में लेटी और मैं करवटें बदल रहा था।

क़रीब बीस दिन पहले की बात है। ऑफ़िस का सहकर्मी चन्दन कोई साहित्य की पत्रिका अपने साथ ले आया। उसके पास साहित्य से सम्बन्धित पत्रिका हमेशा मिल जाती है, वह उसे हमेशा वैसे ही अपने साथ रखता है जैसे सात-आठ साल की नन्हीं लड़की अपने साथ गुड़िया रखती है।

चन्दन को साहित्य पढ़ने का शौक है। कभी-कभार लिख भी लेता है। स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में वह प्रकाशित भी होता आया है और कभी-कभार अपने शहर की गोष्ठी में भी चला जाता है, यह सब चन्दन ने ही मुझे बताया था।

उसने ही मुझे बताया कि, उसके लिए लिखना उतना ज़रूरी है जैसे पैरों में जूते का होना, बदन पर कपड़ों का होना। अगर जूते और कपड़े नहीं हों तो आदमी सिवाय अपने, किसी और से नज़र नहीं मिला सकता लेकिन यदि वह लिखे नहीं तो सिवाय अपने, वह सबसे नज़र मिला सकता है।

मुझे उसकी इन बातों में कोई विशेष आनन्द नहीं आता। कई बार तो मैं पत्नी को उसकी इन बेसिर-पैर की बातों को बड़ा रस लेकर सुनाता हूँ।

लेकिन इतने पर भी मैं कभी उसका

सम्पर्क : *ई-मेल : vbadmera4@gmail.com*

मन नहीं दुखाता क्योंकि मैं जानता हूँ कि रुचियाँ आदमी को आदमी और आदमी को आदमख़ोर बनाती हैं। अगर वह आदमी है तो यह बड़ी बात है फिर कितने जन हैं जो इस सफ़ेदी झाँकते बालों वाली उम्र में आज भी ख़ुद को खुश रखना जानते हैं।

ऑ फ़िस में सभी एक-दूसरे की खिँचाई करते रहते हैं। जब अन्य सहकर्मियों को चन्दन की खिँचाई करने का और कोई अवसर नहीं मिलता तो वे लोग उसको कविता सुनाने के लिए कहते और सुनकर खूब हँसते।

पहले तो चन्दन को यह सब असहज लगता लेकिन चूँकि ऑफ़िस में लगभग आठ घंटे सबको साथ बिताने ही होते हैं, इसलिए इतनी छोटी बात पर वह द्वेष नहीं पालता और तो और खुद भी हँसता है।

पर मैं कभी भी चन्दन की कविताओं पर नहीं हँसता। मुझे अच्छी लगती हैं उसकी कविताएँ। असलियत तो यह है कि मैं ठीक ढंग से कविता और कहानी का 'क' भी नहीं समझता था पर मन तो है न मेरे पास, बस महसूस कर लेता हूँ।

उस दिन भी चन्दन और मैं ऑफ़िस के लंच ब्रेक में लंच करने के बाद यूँ ही बैठे थे। बाक़ी सहकर्मी भी गपशप कर रहे थे। चन्दन ने मुझे किसी ख़ास कहानी के बारे में बताना शुरू किया कि उक्त कहानी ने कैसे उसके मन पर प्रभाव डाला। उसे कई दिनों से नींद नहीं आ रही है। उसे लगता था कि उसकी आँखें भीगती हैं पर पानी जैसा कुछ बाहर नहीं आता तो आ ख़िर वो पानी उसके भीतर कहीं गहरे तक उतर चुका है और एक रोज़ वह उसमें डूब जाएगा।

मैं उस रोज़ बुक्का फाड़ कर हँसने वाला था कि वाक़ई लिखने वाले थोड़े अजीब होते हैं। न जाने किसी तरह रुक गया और वह पत्रिका माँग बैठा। चन्दन ने अपनी बात में रुचि लेते देख झट से अपनी दराज़ से एक साहित्यिक पत्रिका निकालकर मेरे हाथ में रख दी।

मुझे लगा अब मैं चन्दन की कमज़ोरियाँ पहचान जाऊँगा। क्या किताबों के भीतर की दुनिया इतनी शक्तिशाली है जो आदमी की ताक़त पर अपना क़ब्ज़ा कर लेती है।

मेरा मन बल्लियों उछलने लगा, आ ख़िर वर्षों बाद मैं किसी की कमज़ोरियों से परिचित जो होने जा रहा था। मैंने ग़ौर से वाश बेसिन के पास चन्दन को एक बार फिर देखा। उसकी आँखें सचमुच बहुत उदास और थकी थीं। आँखों पर पानी डाला और रुमाल से चेहरे पर फैले पानी को पोंछा।

लंच का समय समाप्त हो गया था, सब अपनी सीटों पर बैठकर दोबारा काम में लग चुके थे। मेरे पास भी ख़ूब काम था। मैं जल्द-से-जल्द काम समाप्त करना चाहता था।

मेरी नज़रें मोबाइल की घड़ी पर थीं, मैं बस घर पहुँचना चाहता था। मुझे लगता

यह समय बस दौड़ता हुआ किसी तरह छह बजे तक पहुँच जाए और आख़िर छह बजते ही मैं अपनी सीट पर से उसी तरह उठा जैसे किसी छोटे बच्चे को ज़बरदस्ती स्कूल में बिठा दिया जाता है और वह किसी तरह अपने शरीर को वहाँ रखे हुए है लेकिन उसके कान बस छुट्टी की घंटी सुनना चाहते हैं और जैसे ही घंटी की आवाज़ उसके कानों से टकराती, उसकी चेहरे की मुस्कान बड़ी हो जाती। टन्न-टन्न।

मैं सोचने लगा, क्या वर्षों से मेरे चेहरे पर कभी-कभार आती यह छोटी-सी मुस्कान आज बड़ी हो रही है। सब मुझे देखते, उससे पहले मैं कार पार्किंग पर पहुँच कर अपनी कार बाहर निकाल लाया। मैंने महसूस किया कि चन्दन भी मुझे आश्चर्य से देख रहा था पर मेरी आँखें आज किसी को न देखकर बस मछली की आँख की तरह पत्रिका पर गड़ी थीं।

घर आकर चाय पीते-पीते ही मैंने वह पत्रिका हाथ में ले ली और उसे उलट-पुलट कर देखने लगा।

पत्नी मुझे विस्मय से देख हँस रही थी।

कुसूर उसका था भी नहीं, मुझे न्यूज़, मोबाइल और अख़बार के अलावा कुछ पढ़ने का न तो समय होता है और न ही रुचि।

आज टी.वी. देखने का मन नहीं किया और पत्नी की नज़र का सामना न कर सीधा बेडरूम में आ गया। मैं चन्दन की कमज़ोरी को पकड़ना चाहता था, मैं जानना चाहता था कि आख़िर ऐसी कौन-सी कहानी है जिसे पढ़कर कोई पैंतालीस वर्ष के भरे-पूरे आदमी को नींद के घर से बिल्कुल बेइज़्ज़त करके निकाला गया हो।

सूची देखते ही उर्वशी ठाकुर की लिखी कहानी 'एक बार आख़िरी बार' चन्दन ने इसी नाम का ज़िक्र किया था, मेरे सामने थी।

'एक बार आख़िरी बार' यह कैसा नाम है। मुझ में कौतूहल बढ़ता जा रहा था। अगले बीस मिनट मेरी आँखें बिल्कुल उस कहानी पर स्थिर हो गईं।

वर्षों बाद नायिका अपने प्रेमी का कोई पत्र पढ़ती अपने अतीत को याद करती है। उसके जैसे मेरी भी पलकें भीग गईं। मुझे ख़ुद पर क्रोध आ रहा था, मैं जो अब तक किसी अपने की मृत्यु पर नहीं रोया आज कहानी ने मुझे कमज़ोर कैसे कर दिया और मैं भावुक हुआ जा रहा हूँ।

मुझे पता ही नहीं चला कब संध्या रात में तब्दील हो गई। कमरे में घुप्प अँधेरा होने लगा और मैं उस अँधेरे में बदहवास-सा पलंग पर बैठा हूँ। मुझे होश नहीं कि बिल्कुल बेड के ऊपर ही स्विच है और जिससे लाइट जलाकर रौशनी को कमरे के साथ ही मेरे भीतर भी आने दिया जा सकता है।

दूसरी ओर पत्नी रात के भोजन के लिए पुकार लगा रही थी पर मुझे तो कुछ समझ ही नहीं आ रहा था। आख़िर बेटी

शिवानी मुझे बुलाने आ पहुँची।

"क्या हुआ पापा आज? न्यूज़ छोड़ अकेले कमरे में बैठे हैं, सब ठीक है?"

मुझे आश्चर्य हो रहा था, बेटी मुझे समझा रही थी। पन्द्रह साल की किशोरी एक पैंतालीस वर्ष के प्रौढ़ से बड़ी समझदारी भरी बातें कर रही थी। मैं हैरान था और समझ चुका था कि कई कहानियों का असर वाक़ई बहुत गहरा होता है। शायद इसीलिए चन्दन ऐसा अजीब है और फिर वह तो लिखता भी है।

"अरे सब ठीक है, तुम जाकर बैठो, मैं बस अभी फ्रेश होकर आता हूँ।"

मैं डायनिंग हॉल में पहुँचा तो देखा पत्नी ने टेबल पर अनगिनत व्यंजन सजा रखे हैं। दो भगोनी में अलग-अलग तरह की सब्ज़ियाँ रखी थीं। बेटी और मैं कुर्सी पर बैठे थे और पत्नी गरम-गरम चपातियाँ सेंक रही थी पर मैं जल्दी-जल्दी खाना ख़त्म करना चाहता था। इसलिए बड़े-बड़े कौर मुँह में ठूँस रहा था। स्वाद आया या नहीं, सब्ज़ी में नमक था या नहीं, मुझे कहाँ पता।

पत्नी मेरे चेहरे पर उतरते-चढ़ते भाव से कुछ भी अनुमान लगाने में असमर्थ थी। असमर्थ तो मैं भी था ख़ुद को समझाने में। मेरे चेहरे पर एक उदासी तारी होने लगी थी। कुछ देर बाद मैं फिर अपने बेडरूम में पहुँच गया। पत्नी ने किचन का बाक़ी बचा काम समेट कर वॉक पर चलने का प्रस्ताव रख दिया।

"आप कपड़े बदलेंगे या यूँ ही पाजामा-कुर्ते में?" वह बोली।

"आज मेरी तबीयत नासाज़ है। तुम ही हो आओ।" मैंने बड़ी सफ़ाई से न चलने का बहाना बनाते हुए कहा।

वह एक पल के लिए निराश हुई लेकिन दूसरे ही पल जैसे उसकी आँखें चमक उठीं और फुर्ती से लौट गई।

मैं समझ चुका था आज वह पड़ोसन के साथ वॉक पर जाएगी। मुझे उससे कोई एतराज़ नहीं था क्योंकि मैं तो कुछ देर अकेले ही रहना चाहता था या शायद फिर दोबारा से वही कहानी पढ़ना चाहता था।

मैंने ध्यान बँटाने की भरपूर कोशिश की लेकिन मन तो बन्द घड़ी की सूइयों की तरह वहीं अटक गया। आख़िर मैंने पुनः पत्रिका हाथ में ले ली।

एक बार फिर उस कहानी को पढ़कर मैं थोड़ा शान्त महसूस कर रहा था।

सहसा मुझे याद आया, मैंने खाना खाने के बाद पानी तो पिया ही नहीं।

फ्रिज से बोतल निकाल मैं गटागट पानी पी गया और फिर पत्रिका लेकर बैठ गया। और भी लेखकों की कहानियाँ उसमें थीं, सो मैंने दूसरे लेखकों की कहानियाँ पढ़ने की कोशिश की, पर नहीं पढ़ पाया। थक-हार कर उसी कहानी के अंतिम पृष्ठ पर नज़र डाली तो देखा नीचे लेखिका के नाम के साथ पूरा पता और मोबाइल नम्बर तक लिखे थे।

मेरे मन में छुपे किसी अज्ञात चोर

ने वे नम्बर चुरा लिए और मोबाइल में सेव कर लिए। मुझे समझ नहीं आ रहा था, यह हरकत मैं कैसे कर सकता हूँ। किसी अंजान स्त्री का नम्बर सेव करने का औचित्य मेरी समझ से परे था, पर उस समय मैं किसी औचित्य के चक्कर तक में नहीं पड़ना चाहता था।

मेरी बुद्धि ने मेरा हाथ छिटक दिया, विवेक भी मुझसे अलग हो गया।

पत्नी कब वॉक पर जाकर आई और कब मेरी कमर पर हाथ रख वह सो गई, मुझे इसका ज़रा भी आभास नहीं था। मेरी आँख तो उसके आने के बहुत पहले ख़ुद से बातें करते-करते लग गई थी। सुबह जब नींद खुली तो उस पर बेतहाशा प्रेम उमड़ आया। मैं ख़ूब देर तक अलसायी पत्नी को यूँ ही देखता रहा फिर मैंने सबसे पहले उस पत्रिका को बैग में रखा।

मैं जानता था चन्दन अपने छोटे-से-छोटे सामान के लिए बहुत जागरूक था। पेन, कार्बन पेपर, डायरी इत्यादि भी उससे कोई माँग कर ले जाता तो माँगने वाला भूल जाए, पर वह निश्चित समय बाद उसकी सीट पर जाकर अपना सामान लेकर लौटता था। यह उसकी अच्छी आदत थी या बुरी, पता नहीं, पर वह कुछ ऐसा ही था और ऑफ़िस में सब यह बात जानते थे।

हम जब किसी को उसकी आदत, स्वभाव और प्रकृति के साथ स्वीकार कर लेते हैं तो बहुत सारे मुद्दे ख़ुद-ब-ख़ुद सुलझ जाते हैं। इसलिए ऑफ़िस के सारे कर्मचारी चन्दन की इस आदत के आदी हो चुके थे।

मुझे भी उसने पत्रिका देते ही कह दिया था कि पढ़ते ही कल लौटा दें, ख़ैर मैं उसकी पत्रिका अपने पास रखकर करता भी क्या। एक दिन में ही मैं भी अजीब आदमी बन गया और फिर कोई अपने सामान की ताकीद मुझसे करे, यह मुझे पसन्द भी नहीं था। ऑफ़िस पहुँच कर सधन्यवाद पत्रिका लौटाई तो वह मेरे चेहरे को ग़ौर से देखने लगा। मैं सकपका गया, "क्या देख रहो चन्दन?"

"रोज़ से कुछ अलग लग रहे हो", वह मुझे टकटकी लगाए देखता रहा पर मैं 'अलग' शब्द का अर्थ खोजने में नहीं लगकर चुपचाप फ़ाइलों में उलझ जाना चाहता था। और मैंने किया भी ऐसा ही। जल्दी से फ़ाइलें खोल अपने-आपको व्यस्त कर लिया, पर लंच ब्रेक में ख़ुद पर क़ाबू नहीं रख पाया और बात की शुरुआत करते हुए मैंने पूछा, "और भी कहानियाँ होंगी ना इस लेखिका की?"

"हाँ, हैं भाई, पर आप और कहानियाँ।" उसके चेहरे पर हँसी साफ़ दिख रही थी।

"ऐसी कोई बात नहीं है। मैं भी कभी-कभी 'मधुरिमा' और 'रसरंग' पढ़ता ही हूँ और बचपन में दादी-नानी से ख़ूब कहानियाँ सुनी थीं।" यह कहकर मैं जैसे सफ़ाई देना चाहता था जबकि सच्चाई जानता था। समाचारपत्र में 'मधुरिमा' और

'रसरंग' के पन्ने तो पत्नी के पढ़ने के लिए अलग रख लेता हूँ मैं, और मेरी नज़रें सिर्फ़ और सिर्फ़ राजनीति,, दुर्घटना, तीसरे की बैठक और खेल वाले समाचार पर ही होती हैं। रही बात दादी-नानी से कहानी सुनने की तो उसे भी तो एक ज़माना हुआ है।

हम ख़ुद को दूसरों की नज़रों से छुपा सकते हैं लेकिन ख़ुद की नज़रों से कभी भी नहीं। मैं फिर भी उसकी तरफ़ नज़र उठाकर नहीं देखना चाहता था।

वह कैसे मेरी मनोस्थिति भाँप गया, मुझे नहीं पता पर उसने भी बिना मेरी सफ़ाई सुने, बिना मेरी तरफ़ देखे आसान उपाय बता दिया, "गूगल पर उर्वशी ठाकुर की कहानियाँ लिखो, आ जाएँगी।"

मैं मन-ही-मन मुस्कुरा पड़ा अपनी बेवकूफ़ी पर। इतना आसान था, यह मैंने उसे जताने की कोशिश नहीं की और न ही धन्यवाद दिया।

"ठीक है यार, वैसे तो इतनी लम्बी कहानियों से कोई सम्बन्ध नहीं लेकिन फिर भी कभी मन हुआ तो पढ़ लूँगा पर लिखती बढ़िया है यह लेखिका।"

लंच के बाद फिर हम अपनी सीट पर काम करने के लिए लौट गए।

ऑफ़िस से लौटकर फिर मैं चाय पी अपना मोबाइल स्क्रॉल करने लगा, लेकिन आज मैसेज नहीं चेक कर रहा था बस गूगल पर 'उर्वशी ठाकुर और उसकी कहानियाँ' खोज रहा था।

बिटिया ने आकर सबसे पहले कमरे में अँधेरे को दूर हटाने का प्रयास किया, उसने जैसे ही लाइट जलाई, मेरे चेहरे पर मुस्कान आ गई। मैं उसे कृतज्ञ नज़रों से निहारने लगा।

यह भी सबसे बड़ा सुख है कि कोई बिना कहे आपके लिए अँधेरे में उजाला भरने का प्रयास करे। बिटिया ने भी उस मुस्कान का जवाब मुझे छेड़ते हुए दिया, "ये मेरे पापा कुछ बदले से हैं।"

चुप्पी ने मेरा साथ नहीं छोड़ा और मैं पलंग पर पीठ के पीछे तकिया लगा आराम की मुद्रा में बैठ गया। वह हँसते हुए दूसरे कमरे में लौट गई।

उसके जाते ही मैंने हाथों में मोबाइल ले लिया।

उर्वशी ठाकुर उम्र पचपन वर्ष, तीस वर्षों से लेखन, कितने ही पुरस्कारों से सम्मानित, क़रीब छह कहानी-संग्रह, दो कविता-संग्रह और चार उपन्यास प्रकाशित। फ़ोटो एकदम सौम्य जिसने बनारसी साड़ी पहन रखी थी और माथे पर बड़ी बिन्दी चमक रही थी। फ़ोटो को ग़ौर से देखने पर भी जो चालीस से अधिक की नहीं लग रही थी। "फ़ोटो हो सकता है दो-चार साल पुरानी हो।" मेरे मन के इतने हिस्से में से एक हिस्सा धीरे-से बोला। "तो तुम कहानियों की आड़ में उसकी तस्वीरें देखना चाहते थे?" मन का दूसरा हिस्सा कहाँ चुप रहने वाला था।

"फ़ेसबुक पर खोज लो, मिल ही जाएगी।" तीसरा हिस्सा आहिस्ता से बोला।

मैंने ख़ुद के ही माथे पर एक चपत लगाई।

गूगल पर बहुत मशक्कत करने पर भी उसकी आठ-दस कहानियाँ ही मिलीं। मैं बिना समय गवाँए उन्हें पढ़ना चाहता था। इसलिए मोबाइल पर नज़रें लगातार थीं। हर कहानी एक-दूसरे से अलग।

ये लेखिका इतना अलग कैसे सोचती है जबकि बात तो हमारे जीवन की ही है।

"अरे! ये लेखक-लेखिका सनकी होते हैं। और फिर सोचने के कौन-से पैसे लगते हैं।" अब तक चुप बैठे मैंने बमुश्किल ख़ुद को संयत किया और कहानियाँ पढ़ने लगा। कुछ देर बाद ही मुझे लगा कि मैं किसी अँधेरी गली में घुस गया और बाहर निकलने का कोई रास्ता मेरी आँखें नहीं खोज पा रही हैं। मैं थक-हार कर उस गली की सड़क के बीचो-बीच पड़े एक बड़े पत्थर पर बैठ गया, तभी पत्नी फिर खाना लगा रही थी रात के लिए। मैं चुपचाप खाने की मेज़ की तरफ़ चल दिया। कितना खाया, नहीं पता। क्या खाया, यह तक नहीं पता।

बस खाकर सीधा छत पर चला गया, मोबाइल लेकर। पत्नी को कह दिया ऑफ़िस में इन दिनों बहुत बुरी तरह काम में उलझा हुआ हूँ और इस सिलसिले में किसी कलीग से ज़रूरी बात करनी है, यहाँ ज़रा से शोर में भी बात नहीं हो पाएगी।

पत्नी को वैसे भी अपनी नौकरी और घर के काम से इतनी फ़ुर्सत थी नहीं जो और सवाल करती।

"हूँ", कह वह फिर काम में लग गई।

मैं छत पर चला गया। मोबाइल में समय देखा तो रात के नौ बज रहे थे। मैंने पिछली रात जो नम्बर सेव किए थे एक बार उन पर नज़र डाली। चोर मन ने हँसते हुए कहा, "फ़ोन लगाना चाहते हो?"

मैं अपने ही चोर मन के सामने पसीने-पसीने हो गया। किसी तरह हिम्मत जुटा मैंने कह दिया—

"तो क्या हुआ। नम्बर बात करने के लिए ही तो दिए थे पत्रिका में। फिर मैं कोई मजनू टाइप आदमी नहीं हूँ। परिपक्वता ओढ़े, सरकारी नौकरी करने वाला एक सम्भ्रान्त परिवार का प्रौढ़ हूँ।" 'प्रौढ़' शब्द मेरे मन में कुछ गहरे तक धँस गया। मैं अपने आधे सफ़ेद, आधे भूरे बालों के बारे में सोचने लगा।

फिर भी मैंने किसी तरह इन सारे उठते ख़यालों को हाथ पकड़ कर बिठा दिया और डरते हुए बस लगा दिया फ़ोन।

दूसरी तरफ़ से आवाज़ आई,

"आप कौन?"

"आपकी कहानी पढ़ी थी। 'एक बार आख़िरी बार।' अच्छी लगी।" मैंने कहा।

"जी धन्यवाद।"

"आपकी और भी कहानियाँ यदि मिल जाएँ तो, गूगल पर कुछ एक कहानियाँ ही हैं।" मैं हड़बड़ाते हुए बोल पड़ा।

"मैं आपके नम्बर सेव कर लेती हूँ और आपको कुछ कहानियाँ भेजती हूँ।"

दूसरी तरफ़ से बहुत ही मीठे स्वर में जवाब आया।

मेरी तो बाँछें खिल गईं। मैं कबसे कहानियों में रुचि रखने लगा। लेकिन रख रहा हूँ, यह चमत्कार कैसे सम्भव। दादी-नानी से सुनी कहानियों के अतिरिक्त मुझे कभी भी साहित्य में इतनी दिलचस्पी रही ही नहीं फिर यह सब कैसे हो रहा है!

कुछ देर बाद ही मेरे व्हाट्सअप पर पाँच-छह कहानियाँ आ गईं। मैं कितनी देर टहलता रहा कुछ ख़बर नहीं परन्तु कहानियाँ पढ़ने को उत्सुक हो मैं अपने बेडरूम में आ गया।

मेरे हाथ जैसे कुबेर का ख़ज़ाना मिल गया हो। न जाने कैसे पर मैंने इस खुशी में चन्दन को फ़ोन लगा दिया,

"हैलो, चन्दन।"

हाँ, बोलो अतुल, इतनी रात फ़ोन।" दूसरी तरफ़ से बहुत ठंडा-सा जवाब था। शायद चन्दन नींद में था या थका हुआ।

पर मुझे इसकी भी फ़िक्र नहीं थी। मैं फिर बोल पड़ा,

"तुम जिस पत्रिका में इस लेखिका की एक कहानी पढ़ रहे थे उस लेखिका ने मेरे एक आग्रह पर कई कहानियाँ भेज दीं।"

"अच्छा। कल बात करते हैं।" चन्दन फिर जम्हाई लेते हुए बोला। मेरी ख़ुशी काफ़ूर होती दिखी, अजीब है ये चन्दन। मुझे लगा इसको मेरी छोटी-सी ख़ुशी में शरीक होना चाहिए पर यह तो ...।

जब कोई आपके छोटे-से सुख में साथ देने वाला साथी न हो तो ख़ुद का अकेले जश्न मनाना भी अच्छा ही है।

मैं बस इससे अधिक इस समय कुछ सोचना नहीं चाहता था। अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर मैं उसकी भेजी कहानियाँ पढ़ रहा था। कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते मेरे हालात अजीब हो रहे थे या मैं ख़ुद अजीब हो गया, पता नहीं पर कुछ तो था जो मुझे बाँधे रख रहा था।

यहाँ तक कि उसकी हर कहानी के बाद मैं प्रतिक्रिया भी लिख रहा था। हालाँकि रोमन हिन्दी में क्योंकि मुझे उसकी तरह इतना हिन्दी में टाइप करना आता भी नहीं। मैं तो बस सामान्य व्हाट्सअप की भाषा ही जानता था और दूसरी तरफ़ वह हिन्दी में टाइप कर 'धन्यवाद', 'आभार' जैसे भारी-भरकम शब्द भेज रही थी। मुझे विस्मय हो रहा था। ये लिखने वाले अलग होते हैं पर मैं कैसे अजीब हो रहा था। उसकी पुरुषों पर लिखी कहानी 'दर्द मुझे भी होता है' पढ़कर तो मेरा मन बुरी तरह उदास हो गया। पुरुषों के मन को समझती मनोवैज्ञानिक कहानी थी।

मैं उसे बहुत कुछ कहना चाहता था पर इतनी जल्दी मुझे समझ नहीं आ रहा था कैसे। और फिर किसी महिला को बार-बार फ़ोन करना।

मैंने हिम्मत करके उसे मैसेज कर दिया–

"पुरुषों का मन पढ़ना आसान नहीं होता है।"

कुछ देर बाद ही रिप्लाई आ गया–

"पर मुश्किल भी नहीं होता है और सच कहूँ तो पुरुष जितना ख़ुद को नहीं जानता, उतना महिला पुरुष को समझती है।"

मैं उसके हर उत्तर पर मुग्ध हुए जा रहा था। वह रात मेरी आँखों में ख़ूबसूरत स्वप्न ही बन गई।

सुबह जब मैं ऑफ़िस पहुँचा तो चन्दन फिर से मेरी ओर ग़ौर से देखने लगा और मुस्कुराकर आहिस्ता से उसने कहा,

"वाह यार तुम तो छुपे रुस्तम निकले। लेखिका से फ़ोन पर कहानियाँ भी मँगवा लीं, पर ख़याल रखना, यह साहित्य की दुनिया अलग दुनिया है। यहाँ पर जैसी तुम साहित्यिक लेखक-लेखिकाओं के बारे में धारणा बना रहे हो, कई बार बहुत-कुछ अलग होता है और हाँ, ये बहुत अलग ग्रह के प्राणी की तरह तुमसे व्यवहार कर सकते हैं क्योंकि यह दुनिया अजीब संवेदनाओं की दुनिया है। इसलिए अधिक अपेक्षाएँ मत पाल लेना।"

मैं चन्दन की बात से न जाने क्यों थोड़ा-सा आहत हुआ। मुझे लगा चन्दन शायद ईर्ष्यावश यह सब कह रहा है या फिर वह सोच रहा हो कि मैं तो साहित्य का आदमी भी नहीं फिर भी उस लेखिका से मेरी बातचीत कैसे संभव। ख़ैर मैं सफ़ाई भी नहीं देना चाहता। इसलिए मौन रहना उचित समझ फ़ाइलों में उलझ गया पर अनजान डोर-सा बँधा लेखिका उर्वशी ठाकुर के साथ मेरा रिश्ता बहुत ख़ास हो गया और फिर सिलसिला चल पड़ा उसके साथ तर्क-वितर्क का।

हम अब कभी-कभी फ़ोन पर भी बात कर लेते थे। वह अपने पति और परिवार के बारे में बताती और मैं उसे अपने परिवार, ऑफ़िस और हाँ, चन्दन और उसकी कविताओं के बारे में बताता। वह अपनी हर कहानी को सबसे पहले मुझे भेजती और प्रतिक्रिया जानना चाहती। मैं कहाँ जानता था कभी कहानियों के बारे में अधिक पर अब राय भी देता। यहाँ तक कि कई बार वह सहमत होती हुई बदलाव भी करती। मुझे ख़ुद पर आश्चर्य हो रहा था, मैं कितना बदल गया। परिवार से तो दूर नहीं हुआ न ही परिवार को दूसरी श्रेणी पर रखा लेकिन संवेदनशीलता बहुत बढ़ गई।

और तो और, मैं पत्नी की मनोदशा और बेटी की सहशिक्षा, उसके शारीरिक बदलाव जैसी बातों पर ग़ौर करता और समझने का प्रयास करता।

सच कहूँ तो मैं परिवार के अधिक निकट आ गया। मैं अब हर आदमी की मनोस्थिति को समझने लगा था। मुझे हैरानी तो इस बात की भी थी कि बात-बात पर नाक पर रहने वाला यह गुस्सा न जाने कहाँ ग़ायब हो गया और अब धैर्य ने मेरे जीवन में बहुत गहरा स्थान बना लिया।

पशु-पक्षियों, प्रकृति और जीवन के दर्शन के बारे में मेरे मन में वर्षों की कई गुत्थियाँ सुलझती चली गईं। मैं ख़ुद में

परिवर्तन साफ़ महसूस कर रहा था।

पर कल रात से मुझे बहुत बेचैनी होने लगी जब उसने मेरे मैसेज को देखा तक नहीं। मैं समझ नहीं पा रहा था उसके उपेक्षित व्यवहार को। मुझे चन्दन की बातें यकायक सच्ची लगने लगीं। लगा वह कह रहा हो कि, 'कहा तो था इन लिखने वालों से अधिक अपेक्षा मत पालना। अब हो रहा है ना बेवजह परेशान-सा।'

मेरी स्थिति मुझे ही पता नहीं थी। मैंने बारह घंटे बाद ठीक ऑफ़िस जाने से पहले उर्वशी को फ़ोन लगाया तो वह सहजता से बोली-

"अरे क्या हो गया जो मैं आपके मैसेज का जवाब नहीं दे पाई। आप जानते हैं मैं लेखिका हूँ, मेरे लिए मेरा लेखन अधिक आवश्यक है न कि हर छोटी बात, मैसेज का जवाब देना। वैसे भी हम औरतें मुश्किल से समय निकाल पाती हैं लिखने के लिए। समझा कीजिए। फिर मैसेज इतना ज़रूरी था भी नहीं। सही बात यह है कि मैं किसी उपन्यास पर काम कर रही हूँ और मेरा पूरा ध्यान उपन्यास पर है। यह लेखन एकांत माँगता है और मुझे मेरा एकांत बहुत प्रिय है साहब।" यह कहकर वह हँसी।

पर मुझे हँसी नहीं आई ज़रा भी। मैंने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। वह 'हैलो', 'हैलो' करती रही और मेरा मन उदास हो गया। सच में मैं अजीब आदमी बन गया था।

अपने मन की इस पीड़ा को चन्दन के संग बाँटना चाहता था पर फिर आहत होने के भय से मन के ही किसी कोने में मैंने कहीं गहरे दबा दिया।

इस बात को एक सप्ताह हो गया, मैंने उसका नम्बर डिलीट करना चाहा पर नहीं कर पाया न जाने क्यों। पर हाँ, अब किताबों से थोड़ी दोस्ती और हो गई और तो और मैं चन्दन से पूछ कर कुछ किताबें अब आर्डर कर मँगवाने भी लगा लेकिन उनके नीचे लिखे नम्बर सेव नहीं करता।

टी.वी. अब भी देखता हूँ और उर्वशी ठाकुर के फ़ोन का इंतज़ार भी करता हूँ पर जानता हूँ वाक़ई औरतें पुरुष के मन को समझ जाती हैं लेकिन पुरुष औरतों के मन को कभी नहीं समझ सकेंगे।

आज फिर कमरे में चन्दन की कोई पत्रिका पढ़ रहा हूँ तभी मोबाइल पर एक संदेश चमकता है और दूसरी तरफ़ मेरी आँखें

मेल चेक कीजिए, उपन्यास का अंश भेजा है। पढ़कर राय दीजिएगा। इंतज़ार रहेगा।"

मेरे चेहरे पर एक मुस्कान खेलने लगी और धीरे-से होंठ बुदबुदाए उसके उपन्यास का शीर्षक पढ़कर 'एक दुनिया संवेदनाओं की'। पत्नी भोजन के लिए पुकार लगा रही थी। मैं एक बार फिर जल्दी भोजन ख़त्म कर 'एक दुनिया संवेदनाओं की' को जानने के लिए उतावला हो रहा था।

मुझे चन्दन मुस्कुराता दिख रहा था और मैं उसकी नज़र-भेदती मुस्कुराहट से बचने का लगातार प्रयास कर रहा था। ❑

कहानी



अनामिका अनु

स्वीटी की अम्मा

1995 का मई महीना, सड़क किनारे आम के पेड़ के नीचे जीभ निकालकर हाँफते कुत्ते, नीम पेड़ के नीचे ककड़ी, तरबूज़, खीरा के ठेले। ककड़ी के ठेले पर पैर लटकाए बैठी हुई है, खीरा लेटकर आराम फ़रमा रहा है। तरबूज़ देह समेट कर बैठा है। काले नमक और मिर्च की डिबिया सुगबुगा रही हैं।

थोड़ी दूरी पर पीपल का झबराया पेड़ है जिसके नीचे सत्तू और कच्चे आम का पना बिक रहा है।

लू और गर्मी का वेग इतना तेज़ है कि आदमी पस्त हो जाए। ऊपर से तपती ज़मीन और रहबट कोई राहत देने के मिज़ाज में नहीं है।

एक पतली-दुबली पाँच फ़ीट की लड़की, घिसी-पिटी चप्पल पहने, सिर और मुँह को दुपट्टे से ढके, लगभग भागती हुई पुलिया की तरफ़ जा रही है। उसके हाथ में एक पन्नी है जिसमें कुछ काग़ज़ और दवाइयाँ हैं।

उसने आसमानी रंग का एक पुराना-सा सिंथेटिक कुर्ता पहन रखा है। वह गर्भवती है और गर्भ के भार के बावजूद पसीने से तर-बतर वह पुलिया पर लगभग भागती हुई चढ़ी जा रही है।

पुलिया पार करके वह शिवपुरी मोहल्ले में पहुँचती है। मोहल्ले की आख़िरी गली में घुसती है और पाँचवें घर के लोहे के दरवाज़े को कई बार छूकर रह जाती है। पास में लीची का पेड़ है। उस पर दो कोयलें चुपचाप बैठी हैं और उस लड़की को एकटक देख रही हैं।

लड़की के पाँव और देह तप रहे हैं। वह अंततः दरवाज़ा धीरे से खटखटाती है। दरवाज़ा वेग से खुलता है। एक अधेड़ उम्र की स्त्री निकलती है और उसे पकड़कर घर के भीतर ले जाती है।

वह लड़की से कसकर गले मिलती है। दोनों की आँखों से अनवरत आँसू बह रहे हैं। वह उसे स्नानघर में जाकर हाथ-पाँव धोने का इशारा करते हुए कहती है–

"धूल और ताप से कुम्हला गई। रिक्शा नहीं मिला?"

सम्पर्क : *ई-मेल : anamikabiology248@gmail.com*

लड़की काग़ज़ और दवाई वाली पॉलिथिन टेबल पर रखकर स्नानघर में जाती है। हाथ-मुँह धोती है। स्नानघर में गुलाबी टाइलें और गुलाबी सिंक लगी हुई है।

एक बीस साल की लड़की मनुहार के साथ पिता से कह रही है–

"पापा! भाई की बात मत सुनना। जब भी बाथरूम में टाइल लगेगी, गुलाबी रंग की ही लगेगी। मुझे गुलाबी छोड़कर दूसरा रंग बिल्कुल पसन्द नहीं है।"

टाइल लगने से पहले ही लड़की भाग जाती है। जब लौटकर आती है तब गुलाबी टाइलों को देखकर अपने बीसवें बरस में कुछ क्षण के लिए लौट जाती है।

माँ की पुकार सुनकर वह स्नानघर से बाहर निकलती है। तौलिए से मुँह-हाथ पोछती है।

माँ माछ-भात, चठेल की भुजिया, सलाद और पापड़ परोस कर लाती है। लड़की धीरे-धीरे खाती है, माँ जल्दी-जल्दी मछली से काँटे निकालकर उसके खाने के कौर में डालती जाती है।

थोड़ी देर बाद माँ अपने हाथों से उसे बड़े-बड़े कौर खिलाने लगती है। कुछ समय बाद लड़की कहती है–

"माँ पेट भर गया। अब नहीं खाया जा रहा है।"

दो जीभ वाली हो गई है, दोगुना खाना चाहिए, तू तो उतना भी नहीं खा पाती जितना पहले खा लिया करती थी। पेट को सिकोड़कर, देह को सुखाकर क्या मिला तुमको?"

लड़की कुछ नहीं बोलती है। बची भात और मछली माँ को अपने हाथों से खिलाती है। दोनों की आँखों से अनवरत आँसू बह रहे हैं। गर्भ में शिशु हलचल कर रहा है। वह शायद नानी की गोद में आने को तत्पर है।

लड़की उदास मन से पूछती है–

"माँ! पापा कब लौटेंगे?"

माँ भी सूने मन से जवाब देती है–

"बेटा! एक घण्टा कहकर गए हैं।"

लड़की सिर और मुँह पर दुपट्टा लपेटते हुए कहती है–

"चलती हूँ, वे आते होंगे। मैं शिव मन्दिर के पास के बरगद के पेड़ के पीछे खड़ी रहूँगी। वे जब रास्ते से आ रहे होंगे, तब उन्हें छिपकर देख लूँगी। दस साल हो गए। वे मेरा मुँह नहीं देखना चाहते, मैं उनका मुँह देखने के लिए तरस गई हूँ।"

माँ एक लाल रंग की सिली हुई सूती सलवार-क़मीज़ लाती है और धीरे-से कहती है–

"स्वीटी! मैंने तुम्हारी पुरानी सलवार-क़मीज़ की नाप देकर ये कपड़े सिलवाए हैं, दर्ज़ी को थोड़ी ढीली बनाने को कहा था, लगा दस साल बाद देह पर और माँस चढ़ गया होगा। ब्याह के बाद मोटी हो गई होगी। तू तो इतनी दुबली हो गई है कि इन कपड़ों में डूब जाएगी। रख देती हूँ पॉलिथिन में, दर्ज़ी से छोटा करवा लेना।" लड़की माँ की तरफ़ देखती है। माँ के चेहरे पर लिखी विवशताओं को धीरे-धीरे पढ़ती है।

माँ की आँख डबडबाई हुई हैं। माँ लड़की को छाता और कुछ रुपये पकड़ाती है। लड़की नहीं लेना चाहती, माँ ज़बरदस्ती देती है। लड़की फिर तेज़ी से सड़क पर आ जाती है। माँ बार-बार उससे कहती है–

"रिक्शा ज़रूर ले लेना। दामुचौक पर मिल जाएगी।" लड़की दो-चार बार पलटकर देखती है। माँ धूप में बिना चप्पल बेसुध खड़ी है। लड़की बढ़ जाती है।

थोड़ी देर बाद उसी घर में एक प्रौढ़ आता है। वह लड़की का पिता है। हाथ-मुँह धोकर टेबल पर बैठ जाता है। पत्नी खाना परोसकर लाती है। मछली, भात, चठेल की भुजिया, पापड़ और सलाद। प्रौढ़ लम्बे समय तक परोसी थाली को ताकता है और मछली के रस के साथ दो-तीन कौर भात खाता है, फिर पानी पीकर उठ जाता है। पत्नी कुछ नहीं पूछती। थाली उठाकर ले जाती है। टेबल को साफ़ करती है और जाकर शयनकक्ष में लेट जाती है। प्रौढ़ कमरे में आकर दीवार से सिर लगाकर पलंग पर बैठ जाता है।

औरत धीरे-से पूछती है, "स्वीटी की याद आ गई?"

वह क्रोधित होकर कहता है, "मर गई हो तो इससे अच्छी कोई दूसरी बात न होगी। सिर की पगड़ी उछाल दी इस लड़की ने। नाक कटवाकर रख दिया। तुम उसे याद कर पाती हो?"

औरत ने कहा, "हर साँस में याद करती हूँ। मेरी न पगड़ी है, न नाक, मेरे पास कोख है, दिमाग़ है और माँ का हृदय। कोख की टीस से हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कता है और आँखें आँसू बहाती हैं। दिमाग़ कहता है तुम ग़लत कर रहे हो।"

प्रौढ़ उसे देखता है। औरत उसकी तरफ़ पीठ करके आँखें बन्द कर लेती है।

प्रौढ़ उठकर मेहमानख़ाने में आ जाता है और लगातार टहलता रहता है। एक घण्टे बाद वह बेडरूम में झाँकता है, औरत सो चुकी है। वह पलंग के बग़ल में रखी अलमारी की दराज़ को धीरे-से खोलता है। स्वीटी की तस्वीर निकालता है, सीने से लगा लेता है और बिना आवाज़ किए फफक-फफककर रोता है। एक घण्टे बाद उस तस्वीर को यथावत दराज़ में रख देता है। घड़ी देखता है। पाँच बजने को है। वह स्नानघर जाकर नहाता है। पायजामा-कुर्ता पहनता है और पत्नी को बिना बताए बाहर निकल जाता है।

शाम के सात बजे घर लौटता है। दरवाज़ा खुला है। वह अंदर घुसता है। उसकी पत्नी कहीं नहीं है। वह बार-बार हर कमरे में उसे तलाशता है मानो वह कोई छोटी-सी ज़रूरी वस्तु हो। टेबल पर एक पत्र पड़ा है।

पत्र में लिखा है–

प्रणाम!

स्वीटी के पास जा रही हूँ। अपने गहने भी ले जा रही हूँ। मेरे गहनों पर सिर्फ़ मेरा और मेरी बच्ची का अधिकार है और कुछ भी नहीं लिया आपके घर से। जितना किया उस घर और आपके लिए उसके एवज़ में आधा घर भी उठाकर ले आती तो कम ही था। मुझे आप में और बेटी में एक को चुनना था, मैंने बेटी को चुना। मैंने झूठे अहंकार और ग़ैर-बराबरी की वकालत करती सामाजिक मान्यताओं के बदले नई सोच, समानता और मनुष्यता को चुना। स्वीटी का पति आपके लिए मुसलमान है मगर मेरे और स्वीटी के लिए एक मनुष्य। हमसे इतर जो उसकी पहचान आपने बना रखी है उस पहचान में उसकी इच्छा, योग्यता काम नहीं करती थी। स्वीटी भी तो आप जैसा पिता डिज़र्व नहीं करती थी मगर उसे मिला न?

दस वर्षों से समझाकर थक गई। अब और क्या समझाना। न मुझे ढूँढ़ना, न बेटी को। आपकी बची-खुची नाक, बची रहे। आपकी हिली पगड़ी सम्भली रहे। ❑

नौ कविताएँ : सुशीला पुरी



प्रेम

(एक)
प्रेम, खण्डहरों के अंतःपुर में
झुरमुटों से घिरी
एक गहरी बावड़ी है
जिसके भीतर हम
ध्वनियों से गूँजते हैं
जाते हैं... लौटते हैं
सदियों से चुप उसके निथरे जल में
कुछ हरी पत्तियाँ, डालें और आकाश
देखते रहते हैं अपना चेहरा
पानी की आत्मा अपने हरेपन और
ध्वनियों के स्पर्श में थरथराती है।

(दो)
प्रेम, एक नन्हीं गिलहरी है
जो बरगद की त्वचा पर
उछलती-फुदकती
बनाती रहती है
अनंत अल्पनाएँ
और पास जाते ही

भागकर छुप जाती है
ऊँचे, अनदेखे-अनजाने कोटरों में।

(तीन)
प्रेम, भूख भी है.. आग भी
पकने तपने और स्वाद के बीच
कहीं-न-कहीं
बटुली में खदबदाती रहती है
एक चुटकी चुप
और ढेर सारी भाप।

(चार)
प्रेम, एक ख़रगोश है
हरी दूब की भूख लिए
वन-वन भटकता
कुलाँचे भरता
डरा..सहमा
छुपता रहता है
मन की सघन कन्दराओं में,
उसकी नर्म.. मुलायम त्वचा की
व्यापारी यह दुनिया
नहीं जानती
उसके प्राणों का मोल।

सम्पर्क *: ई-मेल : sushilapuri31@gmail.com*

(पाँच)
पीतल की साँकलों वाला
भारी-भरकम
लोहे का द्वार है
जहाँ असंख्य पहरुए
प्रवेश वर्जित की तख़्तियाँ लिए
घूमते रहते हैं रात-दिन..
और आपको
दाख़िल होना होता है
अदीख हवा में
घुली सुगन्ध की तरह।

(छह)
प्रेम, कबूतरों का वह जोड़ा है
जो पिछली कई सदियों से
पर्वत गुफाओं में
गुटुरगूँ करता
पर दिखता नहीं
दिखती हैं सिर्फ़
उनकी अपलक-सी आँखें
और आँखों का पानी।

(सात)
प्रेम में
अगन पाखी उड़ता है
भीतर-ही-भीतर
भीतर ही भस्म होते हम
खोजते रहते हैं
अपने हिस्से की मृत्यु
प्रेम के लिए
सिर्फ़ जीवन ही नहीं
मरण भी
उतना ही ज़रूरी है।



(आठ)
बरसता है अमृत
अहर्निश
कटोरी की खीर में नहीं
पाँच तत्त्वों से बनी
समूची देह में,
कमबख़्त चाँद को
ये कौन बताए!

(नौ)
अगोरता
माँ का स्पर्श
किसी झुरमुट में
किसी कोटर में
किसी निर्जन में
पंछी के बच्चे-सा
दुबका रहता है प्रेम। ❑

तीन कविताएँ : **विशाखा मुलमुले**



दो दरवाज़े

दुमन्ज़िला घर में
निचले तल के दरवाज़े अधिक काम में आए
वही स्वागत और विदाई के लिए खुलते-बन्द होते रहे
उन्हीं में लगी सेंध
दीमकों ने उन दरवाज़ों में बनाए घर
चूहों ने कुतरी उन्हीं की जालियाँ

ऊपरी तल के दरवाज़े
रहे इन सारी उठा-पटक में
एक प्रकार से अनभिज्ञ

रंगोली बनी तो निचले दरवाज़े के सम्मुख
अंतिम बार दर्शन की भीड़ उसके ही सामने
वहाँ से निकल जाना हमेशा ही रहा आसान
पर नज़रें मिलाकर प्रवेश करना बेतरह कठिन

निचले दरवाज़े की कई आँखें रहीं
तीसरे नेत्र की तरह बीचो-बीच छुपी एक आँख भी रही
वह ताड़ लेती आगंतुक के लिए
दरवाज़ा खोलना है कि नहीं
या बन्द रखना है जैसे कोई आहट हुई ही नहीं

नींव की तरह निचले तल के दरवाज़े ने
बनावट के बने रहने में उठाया अतिरिक्त भार
जितना पुश्तैनी निचले तल का दरवाज़ा
उतना सुख ऊपरी तल के दरवाज़े के हिस्से में।

जादू है

इस प्रतीक्षा में दुख की सीलन नहीं है
न ही डबडबाई आँख है
यहाँ समूचे अस्तित्व में
परोक्ष में, अपरोक्ष में
तुम्हारी याद की बरसात है

यह दुलीचे की तरह जो फूल बिखरे

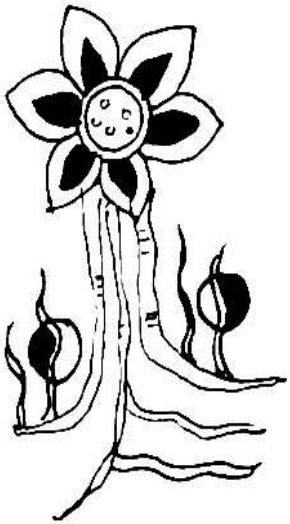
सम्पर्क *: ई-मेल : vishakhamulmuley@gmail.com*

पड़े हैं
या ये जो अमलतास के झूमर सजे हैं
या ये जो पलाश तुम्हारी चाह में दहक रहे हैं
सब मेरे प्रेम का रूपांतरण हैं

प्रतीक्षा में,
तुम्हारी हर बात का जादू
मेरे अंतस्तल में
महुए की तरह टप-टप टपक रहा है!

व्यक्तित्व

एक व्यक्ति जिसकी उपस्थिति
चार मनुष्यों के समान
गर वह बोले तो भूत, भविष्य, वर्तमान
उसकी वाचा की चौखट पर फेरी लगाते
गर वह चले तो डोलें गृह के छोटे-बड़े उपग्रह
गर शान्त रहे तो लगे सूर्यास्त की बेला
टिमटिमाने लगते आकाश में तारे
कभी लगे उसका जीवन मूर्छा में बीत रहा
कभी जीवन व्यापार के बाद तट पर दिखती
निर्लिप्त बँधी उसकी नाव
कभी इतना उत्साह की जीत ले सारा संसार
तो कभी नहीं दिखता
उसकी डाल से जुड़ा कामना का एक भी पात



कभी मन उखड़ा हो, तो
भोजन की थाल में पंच पकवान भी पानी भरे
मन सधा तो उसे मिले
दाल-रोटी में भी स्वार्गिक अनुभूति

ऐसे व्यक्ति के कहीं जाने से
समूह से बिछड़ने-सा बिछोह
छीन ली गई हो जैसे बचे लोगों की
वास्तव से वास्तविकता
जैसे थके-माँदे लौटे हों युद्ध से सैनिक
जैसे सोख लिया गया हो हड्डियों से कैल्शियम

एक व्यक्ति जिसके इर्द-गिर्द
दोलायमान हो समय
उसके जाने के बाद समय
की भी थम जाए श्वास। ❑

दो कविताएँ : अनामिका चक्रवर्ती



छटाँक भर खुलता है आकाश

दीवारों पर सीलन ने बना दिए
न जाने किन देशों के नक्शे
ये नक्शे तो पहले-पहल हाथों से बनी
रोटियों में भी न दिखे

कपड़ों में जमी हुई नमी
हवा को भी कर देती है नम
गीली लकड़ी से उठता धुआँ
जैसे भर देता है आँखों में पानी

दिन दोपहर और शाम
सबकी रंगत हो जाती है एक जैसी
वक़्त का घड़ी से चलता है पता
रात की भी बत्ती-गुल के साथ
हो जाती है दो-चार

छटाँक भर खुलता है आकाश
तो भर जाते हैं तार कपड़ों से
रंग-बिरंगी तितलियों की तरह
फिर उड़ आते हैं कहीं से बादल
बरसने लगते हैं फुहार बनकर
उड़ने लगती हैं तितलियाँ फिर तारों से

दिन हफ़्ते पखवाड़े भीगा रहता है मौसम
न छँटते हैं बादल न रुकती है बारिश
धूप के इंतज़ार में लगने लगता है ऐसे
जैसे गिर पड़ी है धरती के ऊपर
औंधे मुँह बारिश।

ऐसा प्यार मुझे तो है... क्या आपको है?

कोई अदा, कोई मुस्कुराहट,
कोई गहरी-सी आँखें

सम्पर्क : *ई-मेल : anameeka112@gmail.com*



कोई सागर जैसी ख़ामोशी,
कोई चंचलता भरी उन्मत्त हँसी

कोई जिसकी आत्मा से कविता उतरती हो
आँखों में चित्रकारी की
अद्‌भुत कृति उभरती हो
कोई ऐसा जिसके दिल में संगीत
कल-कल करती नदी की तरह बहता हो

कोई अक़्लमंद मगर बुद्धू-सा
कोई न जताकर भी सब कुछ कह देने वाला
जो लगता हो पानी की तरह पारदर्शी

कोई आवाज़, कोई पुकार, कोई चुप्पी
ऐसे कुछ लोग
इतने प्यारे होते हैं कि
उनसे प्यार-सा हो जाता है

जो न कोई प्रेमी होते हैं न प्रेमिकाएँ होती हैं
पर बार-बार, कई बार
उन्हें देखने-सुनने, पढ़ने-महसूस करने
और उनके बारे में बातें करना अच्छा लगता है
उन्हें सोचना अच्छा लगता है
देखना, देखकर छुपे रहना
अच्छा लगता है

उन्हें खो देने का डर होता है
उन्हें पा लेने का मन होता है

जिनसे कोई चाहत नहीं होती,
उनके लिए दुआ बनी रहती है..
उनके लिए अजीब-सा मोह बना रहता है
सच बहुत प्यारे होते हैं ऐसे वे लोग
जिनसे प्यार-सा हो जाता है
उनके जाने बग़ैर उन्हें जताए बग़ैर
अच्छा लगता है उन्हें चाहते रहना
एक चुप्पी को ख़त की तरह
उन्हें लिखते रहना
जिसका पता उन्हें कभी
पता ही नहीं चलता। ❑

दो कविताएँ : पल्लवी मुखर्जी



तुम्हारी हँसी

तुम्हारी हँसी
तोड़ देती है
एक लम्बी चुप्पी
घर की

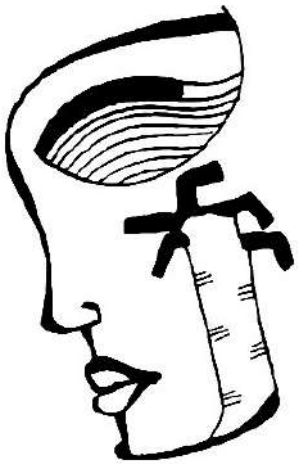
और
मेरे शब्द
निकल पड़ते हैं
नदी की तरह

तुम
बाँधना चहते हो
मुझे
छोटे-छोटे
बाँधों से

और मैं
तोड़ देना चाहती हूँ
उन बाँधों को
निकल पड़ना चाहती हूँ
तुम्हें थामकर

आकाश की ओर।

तानाशाह



आटे की तरह
ख़ुद को समेटती हूँ
गूँथती हूँ
नर्म लोई के लिए
तुम्हारी थाली की
रोटियों में
कंकड़ों की रड़क
नहीं होनी चाहिए
न ही
नमक तेज़
दाल में

चीज़ों को
बीनने-समेटने में
स्त्री के पास दृष्टि होती है पैनी
तालाब के किनारे समाधिस्थ
एक बगुले की तरह

लेकिन
गेहूँ के पिसने का दर्द
उसकी जड़ों को पता है
कितने ही
पड़ावों से गुज़रता हुआ
फूलता है
एक अदद रोटी में
तमाम छिछले
दर्द को परे ढकेलकर

लेकिन यह भी सच है
एक तानाशाह भी
मर सकता है
एक भिखारी की तरह
अगर उसे रोटी न मिले। ❑

सम्पर्क *: ई-मेल : pallavimukherjee42@gmail.com*

कविता : निवेदिता झा



सुनो तुम

कितनी आँखों से गुज़रती
कितने आवरण से ढँकती
कभी कोई मुख देख ठिठकता
कोई समर्पण पर समर्पित
भूमिका में अपने नाम को ढूँढ़ती
पगडंडियों से गुज़रकर
गुमनाम गलियों से
मुख्य सड़क तक आते-आते
सदियाँ बीत जाती हैं

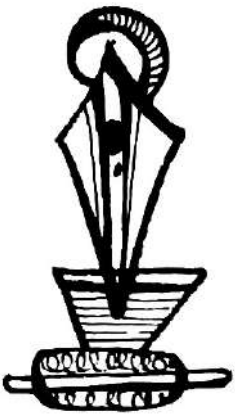
ख़ूब हुआ विमर्श ख़ूब हुईं बातें
तुम आकाश का क्षेत्रफल
और धरती की विशालता नापती हो
और तुम्हें देख लपलपाता है समय
हद है भला तुमको लिखने कोई अन्य
कैसे बैठा है
किसने पढ़ा है तुम्हें, समझा है तुम्हें
अनर्गल बातें कि तुम कमज़ोर हो

याद है न तुम्हें सीता स्वयं योगमाया थी
जिस धनुष को वो रोज़ उठाती
उसे कोई जबरन उठा सकता था भला!
दूसरों को ख़ुश करने की आदत
शायद परिणाम रही
और कुछ अपनों के अपने बने रहने की
आश्वस्ति

सुनो तुम।
तुम लिखों सच और रचो वो दुनिया
जहाँ मोहब्बत आबाद रहे। ❑

सम्पर्क : ई-मेल : niveditaart@gmail.com





भाषा की मुनादी

मैं खुलकर बोलना चाहता हूँ
सत्य के पक्ष में
पर नहीं बोल पा रहा हूँ
कुन्द हो रही है मेरी आवाज़
झूठ के नुमाइंदों के बीच

शब्दों को गढ़ने में माहिर मैं
अभिव्यक्ति की अनुपम कला में माहिर
तत्पर हूँ अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाने ख़ातिर

पर ये क्या?
घोंट दिए जा रहे हैं मेरे शब्द
मेरे शब्दों की घरघराहट
भेद रही है मेरे ही कानों को...

मैं कर रहा हूँ ख़ुद को तैयार बार-बार
पर बार-बार कर दी जाती है मेरी भाषा
ख़ारिज
झूठ की तख़्तियों के बीच...

मैं बोलूँगा,
अवश्य बोलूँगा
इन ख़तरों को उठाने के लिए अब तैयार
हूँ मैं
बार-बार हो रही है मेरी भाषा की मुनादी
पर मैं बोलूँगा, भाषा की हत्या होने से पहले
तर्क के ठोस औज़ार और जीवन्त भाषा में
बोलूँगा। ❑

सम्पर्क *: ई-मेल : vandnagpt3@gmail.com*

दो ग़ज़लें : रश्मि गुप्ता



(एक)

अब आँसुओं को इजाज़त नहीं बहाने की
चुका रही हूँ मैं क़ीमत भी मुस्कुराने की

ख़ुद अपने-आप में रहना पसन्द है जिनको
उन्हें तलब ही नहीं बेरहम ज़माने की

जो लौ लगाए हुए हैं ख़ुदा की रहमत से
उन्हें हवस ही नहीं है किसी ख़ज़ाने की

मैं छान आई हूँ अपने जुनून से सहरा
यहाँ पे बात न कीजे किसी दीवाने की

सिखा रहा है वही राग-रागनी मुझको
जिसे है शौक़ बहुत बेसुरा-सा गाने की

तुम्हारा घर न उसी आग में झुलस जाए
कभी न सोचो पड़ोसी का घर जलाने की

ख़ुद अपने मन को बनाया है प्रेम का मन्दिर
मुझे तलब ही नहीं अब किसी ठिकाने की

क्यों रोने वालों की तस्वीरें लेने लगते हो
ज़रा करो कभी कोशिश उन्हें हँसाने की

बड़े से शहर से अब ऊब-सी गई 'रश्मि'
अजीब ज़िद है मेरे दिल की, गाँव जाने की।

(दो)

अजब तरह के हैं हालात ज़िन्दगी के लिए
भटक रही हूँ अँधेरों में रौशनी के लिए

हज़ार दावे करें मतलबी जहाँ वाले
मगर नहीं है यहाँ कोई भी किसी के लिए

यहाँ तो रात से डरने की रस्म ख़त्म हुई
उजाला भी नहीं महफ़ूज़ आदमी के लिए

ये इश्क़ वक़्त से पहले ही मार डालेगा
निकल पड़े हैं कहाँ आप ख़ुदकुशी के लिए

जबाँ ख़ामोश, निगाहों में पड़ गए पर्दे
सदाएँ देने लगा कौन रहबरी के लिए

रदीफ़, क़ाफ़िया और बहर तो सलामत हैं
कहाँ से लाऊँ ख़यालात शायरी के लिए

किसी भी पल का भरोसा तो है नहीं 'रश्मि'
जतन करेगा भला कौन इक सदी के लिए। ❑

***सम्पर्क** : ई-मेल : rashmiguptadk@gmail.com*

तीन कविताएँ : **प्रिया वर्मा**



(एक)

गीत में सुन्दर लग रहा है जो सवाल
प्रेम के बारे में
चिड़िया की शक्ल में
अभी कविता की डाली पर उतर आएगा

एक झोंके से तालाब का पानी हिलोरें लेगा और
कुरूप हो जाएगा

पास की किसी कहानी के कोने में
मुँह फुलाए बैठा मिलेगा
कि मारो गाल पर मुक्के और गम्म् से
मुँह की हवा बाहर बह आए

कुछ ऐसा है नुकीला
भोथरा भद्दा बेडौल बेढंगा और बिखरा
मॉडर्न आर्ट के क़द्रदान सरीखा
दुरूह किन्तु अपना

कि जैसे के बग़ैर कहूँ
तो याद आ रहा है इंद्रधनुष
पर याद को बिना कहे कहूँ कैसे
कि सात रंग का
झेलम चेनाब सतलज राबी और ब्यास
बिखर कर पानी से पानी
किसी की छत पर तो छलक जाता ही है
सारे अड़ियल रंगों से मिलकर बनता है जो
शैतान रंग
सफ़ेद कि आसमानी
मैला हो जाता है
एक ज़रा छूने-भर की कल्पना तक से

डर लगता है कि
ख़तों में अब नहीं होते सवाल
क्योंकि सवाल तो अपनी जगह पर ही होते हैं,
नहीं होते तो ख़त ही नहीं होते

उम्मीद की शक्ल में प्रेम के साथ लिखना
लौटती डाक से हाल कहना

कि जवाब देते मन डोल जाए
गीत नहीं कविता है–
जहाँ बिखरा हुआ सबकुछ सम्भल जाए।

(दो)

मेरी मुश्किलें तुमसे अलग हैं दोस्त!
इसकी तुम्हें ख़बर भी है!

मुझे अपनी दिक़्क़तों के बारे में तुमने
कभी बताया नहीं
शायद तुम्हें बयान करना नहीं आता

सम्पर्क *: ई-मेल : itspriyaverma@gmail.com*

पर बखान करना बख़ूबी आता है तुम्हें
पर बखान में भी तुमने मेरी तकलीफ़ों पर ही
बातें कहीं दोस्त!

क्या यह बेहतर नहीं होता कि
मेरे बारे में तुम मुझे बोलने देते
तुम वह बोलते जिसके लिए तुम चुने गए हो
बेशक हमारे पास चुनने की आज़ादी नहीं थी
कि हम क्या होते
पर हम क्या कहते क्या समझते
यह हम विकसित कर सकते थे पर अफ़सोस
कि जब मैं अपनी दिक़्क़तों में अपनी पीठ पर
चढ़ती एक अंतहीन क़तार के
बारे में कह रही हूँ

नदियों में बह चुका है अगणित प्रायश्चित
इन्हीं में बहाई गई हैं मेरी पुरखिनें
इन्हीं में मैं
इन्हीं में कोयला कालिख होकर
मेरी विरासत बहेगी

तुम अपनी विरासत देखो दोस्त!

(तीन)

एक साँचा होता मनुष्यता का
पृथ्वी की एक होती गहराई हर तल से
एक जैसा होता क्षितिज हर नज़र से
एक जैसे होते हम सब मनुष्य
एक जैसे होते धर्म पंथ सम्प्रदाय पुण्य पाप
पश्चाताप
कितना अच्छा होता तब!

पर नहीं होता सब एक जैसा
एक जैसा नहीं होता एक ही गर्भग्रीवा से चिपटा
एक वंश
नहीं होता रोज़ दाल और चाय का एक स्वाद
नहीं होता एक जैसा दिन
नहीं होता हर आदमी एक जैसा

रक्तवर्ग ही क्यों पाप भी अलग होते हैं, अच्छाई
अलग, सपने अलग और यथार्थ अलग-अलग
एक घर, एक खिड़की, एक उदाहरण
के मर्म अलग

कहने का एक फ़र्मा होता तो
सब कितना एकरस होता
एक जैसा रक्तवर्ग भी नहीं होने देता
हथेली की छाप को एक-सा
फिर भी चाहिए पृथक कथ्य में
एक-सा कथानक
कथा का, महाकाव्य का, एकांकी का,
जीवन का भी
चरम पर सब को चाहिए
न्याय और शान्ति
थोड़ा प्रेम, थोड़ी करुणा, थोड़ा उजाला

तो अन्याय, अतिरेक, अंधकार और
अत्याचार कहाँ जाएँगे
कहाँ रहेंगे आततायी और पीड़ित
स्वरों को रास्ते कहाँ मिलेंगे
जब सब एक सप्तक पर एक स्वर में
एक राग का आरोह-अवरोह गाएँगे

तो बन्द करवाने होंगे सारे रंगमंच
और समेट लेगा अस्तित्व अपनी
बिखेरी सब नाटिकाएँ
भंगिमाओं में रत नायक व नायिकाएँ
जो कहीं किसी कथानक में हैं
खलनायक व खलनायिकाएँ। ❑



दीवारें अगर बोल सकतीं

दीवारें अगर बोल सकतीं
तो शायद.... हम वो न होते जो आज हम हैं,
तो शायद.... हम वहाँ न होते जहाँ आज हम हैं,
दीवारें अगर बोल सकतीं
तो बहुत-से अनकहे-अनसुने राज़ खुल जाते,
और बहुत-से अनर्थ होने से बच जाते
दीवारें अगर बोल सकतीं
तो बहुत सी घटनाएँ घटित होती ही नहीं
बहुत-से युद्ध थम जाते,
और बहुत-से कुकर्म जो घटित हो चुके हैं,
उन्हें करने से पहले,
मानवता से पशुता की ओर निरन्तर
अग्रसर होता मनुष्य
अवश्य ही ठहरता,
वह अपने ही हाथों, अपनी धरती पर
मचाई विनाशलीला पर खून के आँसू रोता
दीवारें अगर बोल सकतीं
तो वे पूछतीं– कि भला क्यों
कभी जाति के नाम पर, तो कभी धर्म की आड़ में,
कभी सत्ता के लोभ में, तो कभी स्वार्थ के भाव से,
ये दीवारें- यूँ जबरन खड़ी कर दी जाती हैं,
दो देशों के बीच जो कभी एक थे, दो हृदयों के बीच
जो कभी एक थे,
जिन्हें- एक होते हुए भी अब पृथक जीवन व्यतीत करना पड़ेगा
आज देश में विविधता तो वही है, पर एकता
टूटती-सी नज़र आती है
तभी तो चारों ओर अधर्म, लोभ, ऊँच-नीच की दीवारों की संख्या बढ़ती ही चली जाती है
जहाँ कितने ही घर हैं जो अब सिर्फ़

सम्पर्क *: ई-मेल : dishaa.jagoorie@gmail.com*

मकान हैं,
गली-कूचे-रास्ते जो कभी खुशियों से
खिलखिलाते थे
वह अब मौत के घुप्प सन्नाटे में पड़े
वीरान हैं
खेत जो कल तक पीली सरसों से लहलाते
थे वह
आज ख़ून के रंग में लाल हैं
बर्बाद बस्तियाँ, उजाड़ मंज़र चारों ही ओर
हैं
खो गया बहुत कुछ, बचा क्या? यह पता
नहीं,
फ़र्क़ है, तो सिर्फ़ इतना कि कल तक था
जहाँ कुछ भी नहीं,
वहाँ अब पहचान के लिए खड़ी एक
दीवार है
दीवारें अगर बोल सकतीं
तो वे पूछतीं कि क्या मनुष्य ने कभी सोचा
है कि
ये दीवारें भला कैसे खड़ी होती हैं?
क्या यूँ ही? अपने-आप?... जी नहीं
यह हम ही हैं जो इन दीवारों को
इस संसार में लाते हैं

और अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर, इन
दीवारों को ही



सारी कलुषता फैलाने का दोषी ठहराते हैं
हम समझते ही नहीं कि मन्दिर, मस्जिद,
गिरजाघर
व गुरुद्वारे की दीवारें,
दिलों को जोड़ने के लिए खड़ी की जाती
हैं,
दिलों को तोड़ने के लिए नहीं
तो आइए, आज एक नई शुरुआत करें
भारतीयता को एक सही परिभाषा देने का
प्रयास करें
किसी धर्म-जाति या प्रान्त का होने से
पहले भारतीय बनें
तब दीवारें खड़ी होने की गुंजाइश रहेगी
ही नहीं,
क्योंकि तब हम-एक होंगे, अनेक नहीं।❑

आज़ादी का अमृत महोत्सव

रोहिणी बरुआ
हम आज़ादी की मतवाली हैं

रविचन्द्र गुप्ता

1934 का वर्ष। तत्कालीन बंगाल (अब बांग्लादेश) का फ़रीदपुर शहर। उस समय बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ चरम सीमा पर थीं। अंग्रेज़ अधिकारियों की नींद उड़ी हुई थी। प्रातः काल के समय एक युवती सामान्य खद्दर की श्वेत धोती पहने अपनी सहेलियों के साथ वंशीधर शुक्ल की निम्न पंक्तियाँ गाती हुई एक सड़क से जा रही थी।

सिर बाँधे कफ़नवा हो, शहीदों की टोली निकली

अंग्रेज़ों के छक्के छूटे, शेख़ी मिल गई धूर

नानाजी के मुक़ाबले डटा न एकौ शूर

वीरता पोली निकली

सिर बाँधे कफ़नवा हो.....

जिधर भी यह टोली निकलती, दर्शक उसकी तेजस्वी को सुनने के लिए वहीं रुक जाते और आपस में कानाफूसी करने लगते, "लड़की होकर इतनी हिम्मत... अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रचार कर रही है। जेल की हवा खानी पड़ेगी तो अक़्ल ठिकाने आ जाएगी।"

तो दूसरा कहता, "तुम्हें कुछ पता भी है, यह चार महीने जेल काट चुकी है। तभी तो इस बेचारी से कोई शादी नहीं करना चाहता।"

"तुम सब चुप रहो। हमें उसका सम्मान करना चाहिए। तुम्हें कुछ पता भी है वह 'मास्टर दा' की शिष्या है। वह खुद ही शादी नहीं करना चाहती। वह तो देश की आज़ादी की ख़ातिर अपना जीवन ही अर्पण कर चुकी है। अंग्रेज़ अफ़सर तो उससे स्वयं भय खाते हैं। हमने तो सुना है कि जो थाने लूटे जा रहे हैं, उनमें भी इसी का हाथ है। तभी तो इतनी निर्भयता से गाने गा-गाकर वह जनता में जागृति लाना चाहती है।"

वह युवती थी रोहिणी बरुआ। लोग उसे 'रोहिणी दी' के नाम से पुकारते थे। उसका जन्म 1915 में फ़रीदपुर में हुआ था। बचपन में ही माँ के आँचल की छाया से वंचित हो गई। उसके पिता पक्के देशभक्त

थे और स्वयं अपनी ओजस्वी कविताओं से जनमानस में अंग्रेज़ों के विरुद्ध जन चेतना जागृत करते रहते थे। उनकी कविताओं को सुरीली आवाज़ रोहिणी प्रदान करती थी। उसने कितनी ही बार अपने पिता के साथ नगरों और ग्रामों में घूम-घूमकर अपने सुरीले गीतों से जन-जन में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया।

अब उसके पिता शक्तिहीन हो चुके थे। अतः शीघ्र रोहिणी का विवाह कर देना चाहते थे लेकिन बेटी के सामने शादी का प्रस्ताव करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे। एक दिन उन्होंने अपनी सारी विवशताओं के बंधन तोड़कर झिझकते हुए रोहिणी के सम्मुख प्रस्ताव रखा–बेटी! अब तुम बड़ी हो गई हो। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे हाथ पीले कर चैन की नींद सोऊँ।"

इस प्रस्ताव का प्रतिवाद करते हुए रोहिणी बोली-

"पिताजी। क्या आपने अभी तक मुझे मात्र अपनी पुत्री ही समझा है। मुझमें आपको पुत्र के कोई गुण नज़र नहीं आए?" इतना सुनते ही पिता के सन् का बाधँ टूट पड़ा। पुत्री को अपने कलेजे से लगाया और अश्रुधारा बहाते हुए सिसकियों से ही अपनी सारी बात कह दी।

विवाह की बात सुनकर रोहिणी का मस्तिष्क एकदम घूम गया। वह अतीत के क्षणों में खो गई। जब 'मास्टर दा' सूर्यसेन ने 1930 में चटगाँव शस्त्रागार और कोषागार लूट कर अंग्रेज़ी सत्ता का चटगाँव से सफाया कर दिया था। जब 1932 में प्रीतिलता वादेवार ने अपने दल का नेतृत्व करते हुए अंग्रेज़ों के एक क्लब पर आक्रमण किया था और चारों ओर से घिर जाने पर उसने पोटैशियम सायनाइड विष ज़ुबान पर रखकर आत्म-बलिदान कर लिया था। उस दिन रोहिणी यद्यपि मात्र सत्रह वर्ष की ही थी लेकिन उसी दिन तो उसने विवाह न करके अपना जीवन मातृवेदी पर समर्पित करने की शपथ ली थी। इस शपथ को ही उसने प्रीतिलता के लिए अपनी सच्ची श्रद्धांजलि समझा था। विवाह की बात चलते ही उसके श्वेत वस्त्र आज भी उसके उसी शपथ के साक्षी बनकर उसके सम्मुख आ गए थे। इन्हीं भावनाओं के कारण रोहिणी ने अपने जीवन के समस्त वैभव, आकांक्षाओं और यौवन के सपनों को देश की स्वतन्त्रता की यज्ञाग्नि में होम कर दिया था। रोहिणी ने अनेक बार इंडियन रिपब्लिकन आर्मी के क्रान्तिवीरों को अपने घर पनाह देकर उनकी रक्षा की थी। लेकिन जनवरी, 1934 में इस आर्मी के स्वयंभू कमाँडर 'मास्टर दा' सूर्यसेन की फाँसी के बाद तो रोहिणी ने स्वयं क्रान्तिदल का नेतृत्व करना आरम्भ कर दिया था। बड़ी चतुराई से वह योजना बनाती और पुलिस थानों पर आक्रमण कर हथियारों को लूट ले जाती। उसकी इन्हीं गतिविधियों से पुलिस अधिकारी बड़े परेशान थे। गुलन्दो थाने का थानेदार इरशाद अली अपने सभी सिपाहियों को इकट्ठा कर इसी समस्या का समाधान तलाशने में व्यस्त था। तभी दीवान मंज़ूर अहमद बोला, "सरकार आप

हुक्म तो दीजिए, उस लड़की को आज ही गिरफ़्तार करके आपके क़दमों पर डाल देता हूँ। उसी ने इस क्षेत्र में आतंक मचाया हुआ है।"

"परन्तु उसके विरुद्ध कोई सबूत भी तो हो। बिना सबूत के गिरफ़्तारी का हुक्म कैसे जारी कर दूँ?"

"सबूत" थानेदार के मुँह से सबूत की बात सुनकर मंज़ूर अहमद सोच में पड़ गया। नक़ली सबूत जुटाने में वह पहले से ही माहिर था। अतः वह बोला–

"सरकार मिल गया सबूत। आज रात को आप अपना लश्कर तैयार रखिएगा। अब लड़की को सबूत समेत रंगे हाथ पकड़वाना मेरा ज़िम्मा।' जून माह की तपती दोपहरी थी। रोहिणी नित्य प्रति की तरह स्नानादि से निवृत्त होकर घर के आँगन में कपड़े सुखाते हुए डॉक्टर स्वर्ण सिंह वर्मा की निम्न पंक्तियाँ गुनगुना रही थी–

हम बलवानों की जननी हैं, तुमको बलवान बना देंगी। हम अबला हैं या सबला हैं, तुमको यह ध्यान दिला देंगी....।'

उसकी गुनगुनाहट को बीच में ही विराम लग गया जब कंकड़ से लिपटा एक काग़ज़ उसके क़दमों पर आकर गिरा। उसने सहमते हुए उसे उठाया, खोला और पढ़ा। उसमें लिखा था–

"कल गुलन्दो थाने के बाहर मिठाई बाँटी जाएगी। तुम्हें शीघ्र ही कुछ लड्डुओं का प्रबन्ध करना है। क्रान्तिकारियों की गोपनीय भाषा समझ रोहिणी ने सोचा कि गुलन्दो थाने को लूटने के लिए शस्त्रों का प्रबन्ध करना है। अतः उसने सारा काम छोड़ा। चिलचिलाती दोपहरी में जंगल जाकर वहाँ से लकड़ियों का एक गट्ठर बाँध लाई। अर्धरात्रि में ही लकड़ियों के गट्ठर में पिस्तौलें एवं बंदूकें छिपाई और चल पड़ी ठिकाने की ओर। पूर्ण रूप से आदिवासी के रूप में नंगे पाँव ही अंधकार को चीरती हुई बढ़ चली। उसे कहाँ पता था कि उसी उत्साह से छल भी उसका पीछा कर रहा है। पत्तों की आवाज़ से उसे आभास हुआ कि कहीं कुछ गड़बड़ है। उसने जैसे ही पीछे मुड़कर देखा, अजनबी आकृतियों से सहमकर उसने लकड़ी का गट्ठर फेंका और बचाव की मुद्रा में आ गई। तभी एक सीटी बजी और उसने अपने को पुलिस से घिरा हुआ पाया। पुलिस उसे घसीटती हुई जंगल से बाहर ले लाई।

जंगल के बाहर गुलन्दो थाने का थानेदार इरशाद अली बड़ी बेचैनी से अपनी टुकड़ी के वापस लौटने का इंतज़ार कर रहा था। दीवान मंज़ूर अहमद ने गिरफ़्तार लड़की को उसके सामने पेश किया तो वह ख़ुशी से उछल पड़ा। लकड़ी का गट्ठर खोला गया। उसमें से पिस्तौल, कारतूस, बरामद किए गए। थानेदार इरशाद अली "ओ माई गॉड! क्या यही वह लड़की है जो अपने ज़हरीले गीतों से लोगों में ग़द्दारी के बीज बोती है?"

"यस सर! यही है वह लड़की जिसके गीतों को सुनने के लिए लोग बेचैन रहते हैं। केवल इतना ही नहीं, थानों को

लूटने में भी यह अहम भूमिका निभाती रही है। ये शस्त्र गुलन्दो थाने को लूटने के लिए ठिकाने पर पहुँचाए जा रहे थे। लोग इसे 'रोहिणी दी' के नाम से पुकारते हैं। साहब जल्दी से इसे थाने ले चलिए। दिन निकलने वाला है। यदि किसी ने इसे गिरफ़्तार करते देख लिया तो बखेड़ा खड़ा हो जाएगा।" रातभर की भागदौड़ और कवायद के बाद पुलिस दल रोहिणी को थाने में छोड़ अपने-अपने ठिकाने पर चला गया।

जून माह की 15 तारीख़ की तपती दोपहरी में इरशाद अली ने मंजूर अहमद को बुलाया और बोला-

"मंजूर! देखो वह लड़की, जिसे रात्रि में गिरफ़्तार किया है, उसे मेरे पास लाओ। तुम बाहर ही बैठना। किसी को भी अंदर आने की इजाज़त नहीं है। उससे कुछ पूछताछ करनी है।

मंजूर अहमद ने ऐसा ही किया। रोहिणी ने सहमते हुए कमरे में प्रवेश किया। थानेदार उसे देखते ही बड़ी नम्र भाषा में बोला–

"तुम्हारा नाम रोहिणी हैं? (कुर्सी की ओर इशारा करते हुए) उस कुर्सी पर बैठ जाओ और जो पूछूँ। बताती जाओ।" रोहिणी बड़े संकोच के साथ कुर्सी पर बैठ गई। थानेदार बोला–

"अपने साथियों के नाम बताओ। वह हथियार कहाँ पहुँचाने जा रही थी?"

"मैं अपने किसी भी साथी का नाम या ठिकाना नहीं बताऊँगी। आप चाहे जितनी भी बड़ी सज़ा मुझे दे दें।" थानेदार छड़ी घुमाते हुए अपनी कुर्सी से खड़ा हुआ और धीरे-धीरे रोहिणी के निकट आ गया। बड़े रौब से डाँटते हुए वह बोला--

"ए ग़द्दार लड़की! ज़रा होश में आ। अच्छे-अच्छे बदमाश और गुंडे मेरे नाम से काँपते हैं। तुम सज़ा बर्दाश्त करने की बात छोड़ दो। यहाँ तुम्हारे और मेरे अलावा कोई भी नहीं है। तुम चुपचाप अपने को मेरे हवाले कर दो। दिन निकलने से पूर्व ही मैं तुम्हें रिहा कर दूँगा। किसी को कुछ पता नहीं चलेगा।"

"ख़बरदार इरशाद! जान दे दूँगी लेकिन सम्मान का सौदा कभी नहीं करूँगी।" उसके बढ़ते क़दमों को देखकर रोहिणी ने पलंग के पीछे दीवान पर टंगी तलवार से इरशाद पर प्राणघातक वार किया।

रोहिणी ने भागने का प्रयत्न नहीं किया। बाहर आकर वह ज़ोर से चिल्लाई। "मैंने उसका काम तमाम कर दिया है।"

इरशाद अली की हत्या के अभियोग में रोहिणी पर मुक़ुदमा चलाया गया। मुक़दमे में उसके पक्ष में कोई वकील खड़ा नहीं हुआ। रोहिणी ने निर्भय होकर आपबीती का बख़ान किया। अंग्रेज़ों की अदालत में न्याय की प्रक्रिया के अनुरूप ही जज ने उसे फांसी की सज़ा सुना दी। केवल बीस वर्ष की अल्पायु में ही 18 दिसम्बर, 1935 को रोहिणी ने फाँसी का फंदा चूमकर शहादत प्राप्त कर ली। ❑

(प्रकाशन विभाग की पुस्तक 'शहीद बच्चों की गौरव गाथा' से)

आजकल
इस माह–75 वर्ष पूर्व



सरोजिनी नायडू

मेरे गुरु, मेरे नेता, मेरे पिता

आज मेरे लिए कुछ कहने का कोई अवसर नहीं है। विश्व अपनी अनेक भाषाओं में उनकी वन्दना कर चुका है। जो लोग हमारी

तरह आदर्शों, सत्य, सत्कृत्य तथा शान्ति में विश्वास रखते हैं, उनकी दृष्टि में तो गाँधीजी विश्व-मानव थे ही पर जो लोग मेरी तरह उस महान विभूति के साथ घनिष्ठ रूप से संयुक्त थे, उनके लिए तो आज कुछ कहना असम्भव हो रहा है। फिर कुछ कहें भी तो कैसे कहें? जो कुछ भी मेरी तरह के लोग कह सकते हैं, वह बहुत अंतरंग होगा, और ऐसे अवसर पर अंतरंग तथा व्यक्तिगत बातें छेड़ना मर्यादा का उल्लंघन करना ही होगा। हम पर यह ज़िम्मेदारी अवश्य आती है कि हम समस्त संसार के साथ अपने नेता तथा शिक्षक के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करें। अभी उस दिन की बात है कि जब गाँधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए अनशन व्रत प्रारम्भ किया था। इस अवसर पर उन लोगों ने जो उनके साथ गत तीस या उससे अधिक वर्षों से संयुक्त थे, सन्देश भेजे, रेडियो पर भाषण दिए तथा अन्य अनेक उपायों से भी उन्होंने इस महान लोक शिक्षक के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। कुछ ही दिन पहले मैंने स्वयं एक आवेश के मुहूर्त में एक अपील प्रकाशित की थी, जिसमें मैंने यह पूछा था कि क्या हम इस योग्य हैं कि गाँधीजी हमारे लिए प्राण गँवाएँ। मुझे स्मरण है कि मैंने उस समय यह कहा था कि यदि कोई बात सत्य है, तो यह कि किसी अन्य व्यक्ति में मानव के प्रति प्रेम इस उच्च कोटि तक नहीं पहुँचा है। पर उनमें इससे भी अधिक प्रेम का परिचय तो अब मिला है जबकि मृत्यु की काली यवनिका के अंदर से वे अपने पीड़ित सह-मानव के लिए सहायता तथा आश्वासन का हाथ बढ़ा रहे हैं।

मैंने जब इन बातों को कहा था तो उन दिनों मैं यह नहीं जानती थी कि मेरे ये वचन इतनी सम्भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। अब तो यह प्रमाणित हो चुका है कि उस व्यक्ति से बढ़कर मानवप्रेमी कोई था ही नहीं क्योंकि उन्होंने तो मानवता के लिए अपना प्राण भी अर्पित कर दिया। मैं यह भी हृदयंगम करती हूँ कि कल जिस व्यक्ति के नश्वर रणक्षेत्र में शरीर को अग्नि को अर्पित किया जा चुका है, वह मरा नहीं है। प्राचीनकाल के

ईसा मसीह की तरह मृत्यु के तीसरे दिवस अपने लोगों का क्रन्दन तथा विश्ववासियों की पुकार सुनकर वे मृतकों में से उठकर हमारे पथप्रदर्शक, प्रेमिक, सेवक, अनुप्रेरक के रूप में मौजूद हैं।

यद्यपि यह बात सच है कि हम सभी रक्त के आँसू रो रहे हैं, यानी ऐसे लोग भी रो रहे हैं जो उन्हें घनिष्ठ रूप से जानते हैं, और ऐसे लोग भी रो रहे हैं जो उन्हें केवल नाम से जानते थे, और जिनके लिए वे एक जादूगर तथा अवतार मात्र थे। फिर भी मैं यह समझती हूँ कि इस समय मृत्यु के तीसरे दिन जब वे मृतकों में से उठ चुके हैं, रोना-धोना कोई अर्थ नहीं रखता। ऐसे मौक़े पर आँसू बहाना तो अवसर की पवित्रता को क्षुण्य करना है।

मैं पूछती हूँ कि ऐसे व्यक्ति कैसे मर सकते हैं, जिन्होंने अपने जीवन, आचरण तथा बलिदान, प्रेम, साहस तथा आस्था से जगत को यह शिक्षा दी कि आत्मा ही असली वस्तु है न कि शरीर, जिन्होंने यह शिक्षा दी कि आत्मिक शक्ति अखिल जगत की सेना यहाँ तक कि युगों की सेनाओं से अधिक बली है? क्या बात थी कि जिस व्यक्ति का शरीर लघु तथा दुर्बल था, जिसके पास धन-दौलत नहीं थी, जिसके तन पर पूरे कपड़े तक नहीं थे, जो सूच्यपरिमित भूमि के अधिकारी भी नहीं थे, वे हिंसा की अगणित काली शक्तियों से, साम्राज्यवाद की नखशिख सशस्त्र अक्षौहिणियों से अधिक बलशाली प्रमाणित हुए तथा उन पर विजय पाई।

इस व्यक्ति में क्या ऐसी बात थी कि यह नन्हा-सा आदमी, यह शिशु की तरह लघु शरीरयुक्त जवाँमर्द, जिसने स्वेच्छापूर्वक आमरण क़रीब-क़रीब भुखमरी की अवस्था को इस कारण स्वीकार किया कि वे निःस्व भारतीय जनता के क़रीब रह सकें, और उनके दुख में दुखी रह सकें, सारे जगत पर इतना प्रभाव रखता था। केवल वे अपने प्रशंसकों तथा भक्तों पर ही अपने असर का जादू डाल गए, यह बात नहीं, बल्कि उनकी विशेषता यह थी कि जो उनसे द्वेष रखते थे तथा जो उन्हें नहीं समझते थे, उनको भी वे अपने प्रभाव के मंडल में समेट लेते थे, और ऐसे लोग भी अपने अनजान में ही सही उनका अनुसरण तथा अनुकरण करते थे। उनका प्रभाव इतना अधिक था कि चक्रवर्ती राजा भी उनके सामने फीके पड़ जाते हैं।

इस अभूतपूर्व अश्रुतपूर्व प्रभाव का कारण यह था कि वे न तो निन्दा की परवाह करते थे, न स्तुति की। वे तो सत्य के मार्ग पर अटल रहते थे चाहे कोई कुछ कहो। उनको परवाह थी तो उन आदर्शों की जिनका वे प्रचार करते थे तथा जिन पर वे चलते थे। हिंसा तथा लोभ से उत्पन्न भयंकर विपत्तियों के बीच भी जब उनके सिर पर पतझड़ के सूखे पत्तों की तरह गोलियों की बौछार होती थी और फूल से नरपुङ्गवों के सिर कटकर गिरते थे, उन दिनों भी कभी अहिंसा पर से उनकी आस्था विचलित नहीं हुई।

उनका यह अविचलित विश्वास था कि चाहे सारा विश्व कटकर मर जाए, और चाहे समस्त विश्ववासियों का रक्त नदियों में भरकर सागर का रूप धारण करे, अहिंसा ही वह नींव होगी जिस पर विश्व की नवीन सभ्यता की अट्टालिका खड़ी होगी क्योंकि उनका यह विश्वास था कि जो जीवन को बचाएगा, वह खोएगा, और जो इसे खोएगा, वह इसे बचाएगा।

1924 में उन्होंने पहली बार जो अनशन किया, जिसके साथ मेरा सम्बन्ध था, वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए किया गया था। उस अनशन के साथ सारी जाति की सहानुभूति थी। उनका अन्तिम अनशन भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए था, पर इस बार सारी जाति उनके साथ नहीं थी।

इस बीच में हमारी जाति में फूट फैल चुकी थी, और कड़वापन बढ़ चुका था। अबकी बार हालत ऐसी हो गई थी कि लोग धर्मों के आशय से दूर होकर भटक रहे थे, यही नहीं लोग एक-दूसरे के रक्त के प्यासे थे। बहुत थोड़े-से लोग महात्माजी को समझते थे या उनके अनशन के आशय को हृदयंगम करते थे।

इस अनशन में उन्हीं के अपने सम्प्रदाय के लोग उनसे बदज़न थे। इन्होंने ही कायरतापूर्ण तरीक़े से उन्हें मारकर अपने रोष का प्रदर्शन किया। मुझे हिन्दुओं पर तरस आता है कि इस युग के सबसे बड़े हिन्दू, जो अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने सिद्धान्त के प्रति दृढ़ तथा अविचलित रहे, वे ही एक हिन्दू के हाथ से मारे गए। यह घटना हिन्दू धर्म की मृत्यु-दुन्दुभि है कि एक हिन्दू नामधारी व्यक्ति ने उन्हें मारा, उन्हें जो कि उन सबमें उच्चतम तथा आदर्शस्वरूप थे पर इसकी भी परवाह नहीं है। परवाह भी करें तो क्या होता है? हम तो शोक से मुह्यमान हो रहे हैं क्योंकि तीस साल के अधिक समय से हम लोगों का जीवन एक-दूसरे से इतना जुड़ चुका था कि उनके जीवन में हमारे जीवन का समावेश हो गया था। इसलिए उनकी मृत्यु से हम लोगों की मौत तो नहीं हुई, कम-से-कम हमारा अंगच्छेद तो हो ही गया। बात यह है कि वे हमारे रेशे-रेशे में, रग-रग में समा चुके थे पर साथ ही मैं यह भी अनुभव करती हूँ कि यदि हमने निराश होकर लंगर तोड़ दी, तो फिर हम से बढ़कर विश्वासघातक कोई न होगा। यदि हम यह समझ कर माथे पर हाथ धरकर बैठे रहें कि उनका शरीर उठ गया तो सर्वनाश हो गया, अब कुछ रहा ही नहीं, तो वह बड़ी भारी भूल होगी। क्या हम लोग उनके उत्तराधिकारी के रूप में मौजूद नहीं हैं, क्या हम उनकी आत्मिक सन्तान नहीं हैं जिन पर यह भार है कि उनकी बातों को तथा विचारों को कार्य रूप में परिणित कर उन्हें व्यावहारिक रूप दें? क्या हम उनके विचारों का अलख जगा नहीं सकते? यदि नहीं तो बड़े ही दुःख की बात है।

इसलिए मैं कहती हूँ कि व्यक्तिगत शोक मनाने का समय समाप्त हो चुका। अब छाती पीटने और सिर धुनने का बस होना चाहिए। अब समय आ गया है कि हम सीना तानकर खड़े हो जाएँ, और कहें कि हम उन लोगों की चुनौती को स्वीकार करते हैं जिन्होंने महात्माजी का तिरस्कार किया।

हम महात्माजी के जीवित प्रतीक हैं। हम उनके सैनिक हैं। हम लोग हिंसा से पीड़ित जगत के सामने ध्वजा को ज़ोर से पकड़े रहेंगे। सत्य की शुभ्र ध्वजा हमारी ध्वजा है। हमारी ढाल अहिंसा है। हमारे हाथ में जो तलवार है वह आत्मिक शक्ति की है, और यह रक्तपात के बग़ैर ही चोट करती तथा विजय प्राप्त करती है।

इसलिए भारत के निवासी अब आँसू पोंछकर खड़े हो जाएँ, और आशा से कमर बाँधकर आगे की जययात्रा के लिए तैयार हों। हम उनसे उनके व्यक्तित्व की दिव्य ज्योति, साहस के गौरव तथा उनके चरित्र

के महाकाव्य को उधार लें, और उधार क्यों लें, वे तो हमें इन वस्तुओं को दे गए हैं। क्या हम उनके पदक का अनुसरण न करेंगे? क्या हम अपने पिता की यात्रा न मानेंगे? क्या इस चलाए हुए संग्राम को उसके एकमात्र तार्किक उपसंहार विजय तक पहुँचाए बग़ैर ही चुप हो जाएँगे?

क्या उनका त्याग व्यर्थ जाएगा? क्या उनका रक्तदान केवल यहाँ असर लाएगा कि लोग रोएँ-धोएँ? क्या हम अपने माथों पर उनके रक्त का तिलक लगाकर रणयात्रा न करेंगे? उनका रक्त तो शान्ति का द्योतक है। तीस साल पहले मैंने महात्माजी के अनुसरण का बीड़ा उठाया था, आज मैं फिर उसी महात्मा की सेवा में जीवन अर्पण करने की उस प्रतिज्ञा को दोहराती हूँ।

मृत्यु क्या है? मेरे अपने पिता ने मृत्युशैय्या पर पड़े-पड़े मृत्यु को सन्मुख खड़ी जान कर कहा था "न तो जन्म है, न मृत्यु है। केवल आत्मा एक उच्च सोपान से दूसरे उच्चत्तर सोपान में आरोहण करती है।"

सत्यप्राण महात्माजी एक हत्यारे के हाथ से ही सही उस सत्य के एक उच्चतर सोपान में पहुँचाए गए जिसे वे खोजते थे। क्या हम लोग उनके रिक्त स्थान की पूर्ति की चेष्टा नहीं करेंगे? क्या हम सबकी सम्मिलित शक्ति उनके द्वारा आरम्भ कार्य को पूर्ण करने में समर्थ होगी? कई बार मेरे मन में यह सन्देह उठा करता था कि कहीं वे नोआखाली में मर गए या सेवाग्राम में या किसी दूर के स्थान में, तो हम लोग उन तक कैसे पहुँच पाएँगे? इसलिए यह उचित ही था कि वे राजाओं के नगर में तथा प्राचीन हिन्दू साम्राज्यों के केन्द्र में मर गए- उस स्थान में जहाँ मुग़लों का राज्य था। यह वही स्थान है जिसे उन्होंने विदेशियों से लेकर भारत की राजधानी बनाई।

इसलिए यह ठीक ही था कि वे दिल्ली में मरे। यह उचित ही था कि प्राचीन राजाओं की समाधियों के बीच उनकी समाधि बनी क्योंकि वे राजाओं से भी अधिक राजसिक थे। और यह भी उचित ही था कि शान्ति के इस अग्रदूत की अन्त्येष्टि क्रिया योद्धा के सारे सम्मानों के साथ की गई, क्योंकि जो सेनापति अब तक हो गए हैं, उनमें वे ही सबसे साहसी थे, दिल्ली आज केवल ऐतिहासिक रूप से सात या कई राज्यों की राजधानी नहीं है, अब वह दुनिया के सब बड़े क्रान्तिकारी का पीठ स्थान है, ऐसा क्रान्तिकारी जिसने अपने पराधीन देश को मुक्त कर उसे एक झण्डा दिया।

मैं यह नहीं चाहती कि मेरे गुरु, मेरे नेता, मेरे पिता की राख शान्ति में रहे, बल्कि मैं यह चाहती हूँ कि चन्दन का कोयला और राख तथा उनकी हड्डियों का चूर्ण जीवन तथा अनुप्रेरणा से इस प्रकार ओत-प्रोत रहें कि वह स्वतन्त्रता को चिरंजीवी रखें।

मेरे पिता, तुम विश्राम मत करो, और न हमें विश्राम करने दो, हमें अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रखो। हमें यह शक्ति दो कि हम अपनी प्रतिज्ञा के प्रति सच्चे रहें जैसे तुम स्वयं रहे हो, क्योंकि हम सब तुम्हारे उत्तराधिकारी, तुम्हारे विचारों, स्वप्नों को कार्य रूप में परिणित करने वाले हैं। तुम्हारा सारा जीवन बलशाली रहा है, तुम्हारी शहादत ने उसे इतना बलशाली कर दिया है कि तुम मृत्यु से दूर अपने लक्ष्य के लिए अमर हो चुके हो।

(ऑल इंडिया रेडियो के सौजन्य से) ❑



राकेश कुमार सिंह

चेतना को प्रखर करती पत्रिकाएँ

समकालीन भारतीय साहित्य

ऐसे तो 'समकालीन भारतीय साहित्य' के अधिकांश अंक संग्रहणीय हैं किन्तु अंक 224 (नवम्बर-दिसम्बर 2022) विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करता है।



भारतीय भाषाओं के सृजनात्मक लेखन के साथ-साथ महत्वपूर्ण लेखकों के अवदानों का मूल्यांकन इस पत्रिका की मुख्य विशेषता रही है। विजय शर्मा ने इस बार के नोबेल पुरस्कार (साहित्य) विजेता एनी अर्नो का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया है जिसमें केवल उनकी विशेषताएँ ही नहीं बताई गई हैं, उनकी सीमाओं को भी रेखांकित किया गया है। पत्रकारिता के विकास में राजा राममोहन राय के अवदानों का संक्षिप्त, किन्तु प्रमाणिक विश्लेषण वीरेन्द्र आज़म के लेख में स्पष्ट देखा जा सकता है। लीलाधर जगूड़ी, विनय मिश्र, ओम निश्चल और पंकज चौधरी की कविताएँ एवं ग़ज़ल विशेष पठनीय हैं। गौरहरिदास ओड़िया के प्रख्यात कथाकार हैं। 'जड़' शीर्षक कहानी ध्वस्त होती रूढ़ परम्परा की कहानी है। मधु काँकरिया उपेक्षित जीवन के भीतर गहरी संवेदना तलाशने वाली कथाकार हैं। अभिजात्य संस्कारों के बोझ तले दबे कथाकार जिन विषयों को उपेक्षित समझकर छोड़ देते हैं वहीं मधु काँकरिया एक गहरी संवेदना उभारकर कथा को नई ऊर्जा से सिक्त करती हैं। 'निरीह' कहानी में दो पीढ़ियों के बीच बढ़ते अंतराल एवं उस अंतराल के दंश को लेखिका ने धार दी है। महावीर राजी की 'मुक्ति राग', मोनिका की

सम्पर्क *: ई-मेल : sabadniranter@gmail.com*

'पिघलती बर्फ़' नीरजा पाण्डेय की 'मन का ख़ाली कोना', जे.पी. पाण्डेय की 'बदलते रंग' और मालती बसंत की 'अंतिम पता' शीर्षक कहानियाँ इस अंक की उपलब्धि हैं। 'नए मगध में प्रेम' सुभाष राय की समीक्षा है जिसके केन्द्र में है राकेशरेणु का नया कविता-संग्रह 'नए मगध में।' यह वह मगध है जहाँ संभावनाहीनता का असीमित विस्तार है और क्रूरता एवं अन्याय अजस्र रूप में प्रसारित होता रहा है। 'शब्द ढले अँगारों में' माधव कौशिक का प्रसिद्ध ग़ज़ल-संग्रह है जिसकी विस्तृत भावभूमि की सुन्दर समीक्षा पुरुषोत्तम कुंदे ने की है। नरेन्द्र पुंडरीक, सुभाष नीरव, दिविक रमेश, अशोक जैन और सूर्यकान्त नागर की सामग्री भी विशेष पठनीय है।

मधुमती

'मधुमती' का अंक-11-12 'नेहरू' पर केन्द्रित है। इस अंक के अतिथि सम्पादक पुरुषोत्तम अग्रवाल हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि सम्पादक ने 'नेहरू और साम्प्रदायिकता' (विपिन चन्द्र) शीर्षक आलेख को प्रमुखता देते हुए प्रथम आलेख के रूप में रखा है। सम्पादक ने यह अनुभव किया है कि "नेहरू अपने कार्यों, अपनी सोच और भारत को लेकर अपनी भविष्य दृष्टि के साथ आज भी भारतीय राजनैतिक-सांस्कृतिक चेतना में उपस्थित हैं।"



नामवर सिंह ने आकाशवाणी, बीकानेर के लिए दिए 'भारतीय अस्मिता की खोज और जवाहरलाल नेहरू' शीर्षक अपने व्याख्यान में स्वाधीनता आंदोलन का मुख्य लक्ष्य अंग्रेज़ी सत्ता से मुक्ति के साथ-साथ भारतीय अस्मिता एवं आत्म-गौरवबोध को भी माना है। इस दिशा में नेहरू की पहल ही नहीं, उपलब्धि भी महत्वपूर्ण है। विचारक मणीन्द्रनाथ ठाकुर ने नेहरू को साहित्यकार एवं प्रधानमन्त्री के रूप में लोकतान्त्रिक मूल्यों का संरक्षक बताया है। अनिल नौरिया, मनोज कुमार झा, नीरजा सिंह, शकील अख़्तर, पीयूष बवेले, अब्दुल अज़ीम आज़मी, आदित्य कृष्णा, पुरुषोत्तम अग्रवाल और आलोक वाजपेयी आदि के आलेखों से विभूषित इस अंक में नेहरू के सम्पूर्ण लेखन में से कुछ चयनित आलेख हैं जो अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। कुल मिलाकर यह अंक संग्रहणीय है।

संवेद

(अंक-127, अगस्त, 2022) का इब्राहीम शरीफ़ पर केन्द्रित अंक देखकर सुखद आश्चर्य हुआ। इब्राहीम 7वें-8वें दशक के महत्वपूर्ण एवं चर्चित कथाकार रहे हैं जो किसी सुखद स्वप्न के समान अचानक परिदृश्य से ग़ायब हो गए थे। उस



दौर के आलोचकों ने भी उनकी प्रतिभा को स्वीकारा और उनके समकालीन कथाकारों ने भी। इब्राहीम ने कहानी को, समाज की परस्पर-विरोधी स्थितियों का वैज्ञानिक अध्ययन तथा समीक्षा कर आम जनता में जागृति तथा हर तरह की आज़ादी को भरने वाली सामाजिक तथा राजनैतिक शक्तियों को मज़बूत करने का, ज़रिया माना है। ऐसे में कहानी-लेखन उनके लिए शग़ल न होकर ज़रूरी कार्रवाई है। 1972 ई. में जब उनकी कृति 'अँधेरे के साथ' प्रकाश में आई तो लोगों के बीच चर्चा का विषय बनी रही। पक्ष-विपक्ष दोनों में तर्क आए।

इब्राहीम शरीफ़ ने 'गर्दिश के दिन' शीर्षक से 'सारिका' में मोहन राकेश के सम्पादन काल में स्तम्भ लिखा था। ये स्तम्भ सराहे भी गए। उनके निधन के उपरान्त 'ज़मीन का आख़िरी टुकड़ा' शीर्षक कहानी-संग्रह में संकलित कर उसे प्रकाशित किया गया। इब्राहीम जिस कालखण्ड में अपनी कहानियाँ लिख रहे थे उस काल में जाति एवं सम्प्रदाय का ज़हर बुरी तरह घुल रहा था। इसकी स्पष्ट छाप उनकी कहानियों एवं उपन्यास में देखी जा सकती है। मधुरेश ने उनके कथा-साहित्य के विश्लेषण के सन्दर्भ में इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित किया है। वास्तव में इनकी कहानियाँ क्षरित होते सामाजिक सद्भाव की कहानियाँ हैं। पत्रिका में संकलित सभी आलेख महत्वपूर्ण हैं और इस कथाकार के कथा-साहित्य को फिर से पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। मधुरेश, अब्दुल बिस्मिल्लाह, सेवाराम त्रिपाठी, अरविन्द कुमार, रमेश उपाध्याय, जितेन्द्र भाटिया, सुभाष पन्त एवं सुधा अरोड़ा के आलेख विशेष आकर्षित करते हैं। यह अंक 'संवेद' के अत्यन्त संग्रहणीय अंकों में से एक है।

बनास जन

अपनी विशिष्ट पहचान बना चुका 'बनास जन' का अंक-61 (दिसम्बर, 2022) है। इस पत्रिका ने ख्यातिलब्ध रचनाकारों के साथ-साथ ऐसे नए लेखकों को भी प्रमुखता से



प्रकाशित किया है जिनमें पर्याप्त ऊर्जा एवं सम्भावना है, किन्तु उनकी रचनाएँ या तो बहुत प्रकाश में नहीं आईं या फिर किसी गुट या ख़ेमे से बाहर रहने के कारण अचर्चित रहे। विनय सौरभ का नाम ऐसे ही कवियों में लिया जा सकता है। पत्रिका की शुरुआत ही उनके आत्मकथ्य एवं कविताओं से होती है। इसके ठीक बाद शेखर जोशी ने 'मन की बात' लिखी है। यह लेखक के मन की बात है जिसमें उसकी स्मृतियों एवं आकांक्षा

के साथ आम आदमी की आकांक्षाएँ भी समाहित होती चलती हैं। वसीयत के रूप में अपनी मृत्यु से मात्र तीन माह पूर्व लिखी गई सामग्री शेखर जोशी के उच्चाशय को व्यक्त करती है। कालजयी कृतियाँ देश व काल की परिधियों का अतिक्रमण कर सदैव जनोपयोगी बनी रहती हैं।

इस दृष्टि से विभास वर्मा का 'प्रेमाश्रम' पर केन्द्रित आलेख विशेष महत्वपूर्ण है। इस उपन्यास में 1917 के चम्पारण किसान आंदोलन और सन् 1921-22 के अवध के किसान आंदोलन की स्पष्ट अनुगूँज है। 'प्रेमाश्रम' की रचना कोई आकस्मिक घटना नहीं है। इस कालावधि में टी.एस. एलियट का 'द वेस्ट लैंड' तथा जेम्स जॉयस के 'यूलिसिस' (1922 ई.) का प्रकाशन हुआ था। इस प्रकार यह कालखण्ड विश्व क्लासिक का कालखण्ड था जो आगामी युगों को अनवरत आलोकित करता रहा। आज़ादी के अमृत उत्सव पर नए कोण से विचार करता हुआ अरुण चतुर्वेदी का आलेख उपलब्धियों के साथ-साथ अनुपलब्धियों पर भी विचार करता है। प्रसिद्ध लेखिका फ्रैंचेस्का ओर्सीनी व रविकान्त के संयुक्त लेखन में 'हिंग्लिश लाइव मीडिया के आर-पार' इस अंक की महत्वपूर्ण सामग्री है। 'क्षणिक और अराजक स्थितियों के बीच शाश्वत या चिरस्थायी की अनवरत खोज' शीर्षक आलेख में संजय कुमार ने यूरोपीय सन्दर्भ में आधुनिकतावाद पर गम्भीर विचार किया है। रश्मि शर्मा ('रिंगटोन'), सविता पाठक ('पापा के लिए चिट्ठी'), कैलाश बनवासी ('आयुष्मान पूर्णिमा') और लोकबाबू ('मुख़बिर मोहल्ले का प्रेम') की कहानियाँ इस अंक की ऐसी कहानियाँ हैं जो अनुभव एवं संवेदना के नए संसार में प्रवेश के लिए आमन्त्रित करती हैं। शंकरानन्द, हिलाल अहमद, नरेश चन्द्रकर और वीणा करमचन्दाणी की कविताएँ विशेष रूप से पठनीय हैं। रामशरण जोशी का 'कामरेड दीदी' अरुणिमा दास से जुड़ा संस्मरण है जिसमें रामशरण जोशी और अरुणिमा दीदी ही नहीं पूरा परिवेश है। प्रभात रंजन का कमलेश्वर विषयक संस्मरण भी दिलचस्प है। शम्स तबरेज़ का 'अकबर' (मध्यकालीन इतिहास) विषयक आलेख इतिहास के एक नए पक्ष को उजागर करता है। शुभनीत कौशिक, सुधा चौधरी, माधव हाड़ा, मोहन कृष्ण बोहरा, संजय कुमार और इन्दू कुमारी के आलेख भी महत्वपूर्ण हैं। विशेषकर 'नवजागरण की वैचारिक नियति' शीर्षक आलेख जिसमें कई महत्वपूर्ण तथ्य पहली बार अनावृत्त हुए हैं। रेनू त्रिपाठी, रीता सिन्हा, राजकुमार और रामेश्वर राय कृत समीक्षाएँ भी अच्छी हैं।

इसके अतिरिक्त 'बनास जन' के

अंक-57 में कविवर त्रिलोचन का पुण्य-स्मरण है। त्रिलोचन की रचनाओं को समझने में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण होगी। अंक-58 लोकबाबू के 'बस्तर बस्तर' पर केन्द्रित है। इस उपन्यास का मूल्यांकन क्रमशः नीरज, अमिय बिन्दु, रेणु व्यास, प्रमोद मीणा, प्रियम अंकित, रमेशचन्द्र मीणा, जयप्रकाश, रणेन्द्र और ईश्वर सिंह दोस्त आदि ने अलग-अलग दृष्टिकोण से किया है। अपनी 'रचना प्रक्रिया' पर लोकबाबू का वक्तव्य विशेष महत्वपूर्ण हैं। अंक-59 'कहानी और उपन्यास' से इतर रचनाओं की परिधि से आवृत्त है। अंक-60 में लगभग दो दर्जन नए कहानी-संग्रहों पर समीक्षा है। कहानी के शिल्प एवं अंतर्वस्तु में हो रहे बदलाव तथा उस बदलाव की बारीकियों को समझने में यह अंक निश्चय ही सहायता प्रदान करेगा।

संगना

संगीत नाटक अकादमी से प्रकाशित 'संगना' का अंक-40-41 (अक्तूबर 2020-मार्च 2021) इब्राहिम अल्काज़ी, श्रीराम लागू व गिरीश कर्नाड पर केन्द्रित है। पत्रिका में इन तीनों के व्यक्तित्व व अवदानों पर गम्भीर चर्चा है। अधिकांश आलेख संस्मरणालोचन के रूप में हैं, अतएव इन आलेखों से उनकी रंगमंचीय अवधारणाओं के साथ-साथ तत्कालीन परिवेश भी बिम्बित हो उठता है। भारतीय रंगमंच में आधुनिकता के अनुप्रवेशकर्ता के रूप में इब्राहिम अल्काज़ी की विशेष पहचान रही। इसका यह क़तई अर्थ नहीं कि इन्होंने पारम्परिक भारतीय रंगमंच के सिद्धान्तों को आत्मसात नहीं किया था वरन् तात्पर्य यह कि आधुनिक जीवन-मूल्यों, अनुभूति की जटिलताओं एवं जड़ीभूत होती जा रही सौन्दर्य-दृष्टि में गत्यात्मकता लाने के लिए युगानुरूप प्रयोग करना उन्होंने आवश्यक समझा। इस दिशा में अपने जीवनकाल में ही वे किंवदंती पुरुष बन चुके थे। इनके पूर्व भारत में अभिनय के प्रशिक्षण के लिए कोई प्रमाणिक संस्था नहीं थी जिसमें भारतीय रंगमंच के सिद्धान्तों के साथ आधुनिक सिद्धान्तों का भी समावेश हो। यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि बहुत-से पारम्परिक सिद्धान्त आधुनिक जीवन की जटिलता व्यक्त करने में अक्षम सिद्ध हो चुके थे। परम्परा एवं आधुनिकता के समावेश से उन्होंने रंचमंच के कुछ नए सिद्धान्त भी प्रस्तुत किए जिस पर वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार करना अभी भी शेष है। 'संगना' ने इब्राहिम अल्काज़ी पर सामग्री प्रस्तुत कर महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसी प्रकार श्रीराम लागू और गिरीश कर्नाड के



अवदानों पर भी इस अंक में प्रमाणिक ढंग से विचार किया गया है। यद्यपि इस अंक के अधिकांश आलेख संस्मरणात्मक हैं, फिर भी तीनों के अवदानों को समझने में इससे पर्याप्त सहायता मिलेगी। यही नहीं जिन परिवेशों में उन लोगों ने रंगमंच एवं नाटक को ऊँचाई प्रदान की, उसका भी सही-सही आँकलन सम्भव होगा। कुल मिलाकर यह अंक पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी है।

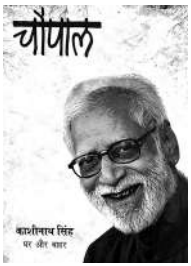
पल प्रतिपल

'पल प्रतिपल' ने हिन्दी की पत्रिकाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। पिछले अंकों को सम्पादक ने 'साहित्य के समकाल' पर केन्द्रित किया है। यह अंक उसी की तृतीय कड़ी है। इसके पूर्व कहानी और आलोचना को केन्द्र में रखा गया था। वर्तमान अंक 'उपन्यास' पर है और सम्पादक के अनुसार आगामी अंक भी उपन्यास पर ही केन्द्रित होगा। इस अंक में जिन कथाकारों पर विशेष रूप से आलेख आयोजित हैं उनमें राजकुमार राकेश, किरण सिंह, सत्यनारायण पटेल, शिवेन्द्र, विक्रम मुसा फ़िर और अमित ओहलाम हैं। इन चयनित कथाकारों की कहानियाँ भी इसमें प्रकाशित हैं और उपन्यास अंश भी। अमरेन्द्र कुमार शर्मा ('उपन्यास की भाषा : गाथा और यायावर क्षण'), रोहिणी अग्रवाल और विनोद शाही के आलेख गम्भीर हैं और कथाकारों के मर्मोद्घाटन में सफल भी। इस अंक के साक्षात्कार भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। पुस्तक समीक्षा के अतिरिक्त चयनिक कथाकारों के उपन्यास अंश भी प्रकाशित हैं जो पाठक की जिज्ञासा को बढ़ाते हैं।



चौपाल

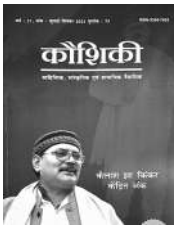
'चौपाल' का अंक-16 प्रख्यात कथाकार काशीनाथ सिंह पर केन्द्रित है। इसमें नई और पुरानी दोनों पीढ़ियों के संस्मरण हैं। मोटे तौर पर इन संस्मरणों की दो कोटियाँ बनती हैं– एक वह जिसमें लेखक एवं लेखक के रचना-संसार का विस्तृत परिवेश अनाहत रूप से प्रकट होता है। दूसरी वह जिसमें परिवेश के साथ रचना की अंतर्वस्तु एवं शिल्प पर भी दृष्टि टिकी हुई है। सम्पादक (कामेश्वर प्रसाद रिक्त) ने सात खण्डों में समस्त सामग्री को बाँटा है। प्रथम में ऐसे संस्मरण हैं जिसमें सामान्य पाठक भी उनके प्रति एक धारणा विकसित



कर सकता है। दूसरे खण्ड में पारिवारिक लोगों के संस्मरण हैं जो वैयक्तिक होने के बावजूद उनके सामाजिक जीवन की ओर संकेत करते हैं। तीसरा खण्ड अपेक्षाकृत विस्तृत है और बहुत कुछ इस अंक की उपलब्धि भी। इस खण्ड में मुख्य आकर्षण बलिराज पाण्डेय, शिवकुमार पराग और संजय राम के संस्मरण हैं। बलिराज पाण्डेय का संस्मरण अपेक्षाकृत विस्तृत और परिवेश को जीवन्त कर देनेवाला है। इस संस्मरण में केवल काशीनाथ सिंह नहीं हैं। काशी का शैक्षणिक परिवेश है, गुरु-शिष्य सम्बन्ध है, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का परिवेश है, तत्कालीन शैक्षणिक राजनीतियाँ हैं और लेखक के स्वयं का संघर्ष भी। सच मानें तो ऐसे संस्मरण ही अपनी सार्थकता सिद्ध करते हैं। चौथे खण्ड में प्रह्लाद अग्रवाल, रामदेव सिंह, सुभाष राय और दिनेश कुशवाह के संस्मरण विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। ये संस्मरण मुख्यतः उन लोगों के हैं जो या तो काशीनाथ सिंह के शिष्य रहे या फिर जीवन में उनसे बहुत कुछ सीखा। इस खण्ड के लगभग सभी संस्मरण महत्वपूर्ण हैं। कुल मिलाकर यह एक संग्रहणीय अंक है।

कौशिकी

'कौशिकी' का अंक-73 कैलाश झा किंकर पर केन्द्रित है। सम्पादक शंकरानन्द ने एक ऐसे जनकवि पर अंक केन्द्रित कर, जिसने जनता की समस्याओं को



अपनी कविताओं में तीक्ष्णता से उठाया और अपनी निजी समस्याओं को ताक पर रखकर आजीवन जनता एवं साहित्य का हित साधन किया, एक आवश्यक लेखक को इतिहास में खो जाने से बचा लिया है। किंकरजी ने हिन्दी के अतिरिक्त मैथिली एवं अंगिका में भी रचनाएँ कीं। जानकी वल्लभ शास्त्री जैसे सिद्धहस्त कवि का मार्गदर्शन उन्हें प्राप्त था। एक उच्च विद्यालय के अध्यापक होने के बावजूद साहित्य में इतना हस्तक्षेप असामान्य बात थी। पारम्परिक छन्द (दोहा, सोरठा, घनाक्षरी, सवैया, मत्तगयंद, बरवै आदि) से लेकर हाइकू और न जाने कितने ही नवीन छन्दों में वे सिद्धहस्त थे। इनके गीत भी मन पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। साक्षात्कार एवं संस्मरण किंकर के साहित्य के साथ-साथ उस परिवेश का भी सही-सही दृश्य उपस्थित करते हैं जिसमें किंकरजी ने साहित्य रचा। पत्रिका के अंतिम खण्ड में किंकरजी की रचनाओं की बानगी उन पाठकों के लिए भी महत्वपूर्ण है जो उनकी मूल रचनाओं से परिचत नहीं हैं। ❑

मूल्यांकन-एक



नीलम कुलश्रेष्ठ

पानी के लिए चिन्तित जलतरंग नाद

'जल' फ़िल्म (वर्ष-2013) आरम्भ ही होती है गुजरात के कच्छ के रण की फटी हुई धरती पर चलते कैमरे व पानी मिल जाने की आस की छटपटाहट से। हीरो (बक्का) धूल से लथपथ कुदाल से कुआँ खोद रहा है। नीचे बहुत नीचे गड्ढे में उसकी गर्भवती पत्नी (केसर) नौ महीने का गर्भ लिए कुछ दूर ज़मीन पर धूल में पड़ी प्यास से बुरी तरह तड़पकर छटपटा रही है, "बक्का! पानी दे ---- बक्का! पानी दे ---- बक्का! मेरे बच्चे को बचा ले।" ----बक्का अपनी पत्नी के उदर में पलती अपनी संतान को लेकर चिन्तित है, तनाव में दिग्भ्रमित हो रहा है ---उसे लगता है वह चला जा रहा है और सामने नदी का पानी उमड़ रहा है। बक्का यानी कच्छ का 'जल का देवता'। यानी कुछ लोगे ऐसे होते हैं जो छठी इंद्री से ज़मीन को ठोककर बता देते हैं कि यहाँ खुदाई करो तो जल निकलेगा। इन्हें लोकभाषा में 'जल का देवता' कहा जाता है।



इस फ़िल्म को सन् 2014 में राष्ट्रीय पुरस्कार तो मिला लेकिन ये फ़िल्म 'एक्सोडस' जैसी भव्य व महँगी फ़िल्म के समकक्ष बेस्ट फ़िल्म व ओरिजनल स्कोर यानी कि ऑस्कर अवॉर्ड की दो श्रेणियों के लिए नामांकित की गई। इतना ही नहीं इसकी कहानी को ऑस्कर के अभिलेखागार में भी संरक्षित कर लिया गया है। ऐसी फ़िल्में राष्ट्र की ही नहीं, विश्व की धरोहर होती हैं जिससे हम जान सकें जिस भूखण्ड पर हम रहते हैं, लापरवाही से पानी का उपयोग करते हैं, उसी भूखण्ड पर कुछ ऐसे स्थान भी हैं जहाँ पानी न मिल पाने से जान

***सम्पर्क** : ई-मेल : kneeli@rediffmail.com*

भी चली जाती है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से विश्व के वैज्ञानिकों ने भूगर्भ में पानी के कम हो जाने की तरफ़ संकेत किया था। इक्कीसवीं सदी तक आते-आते ये चिन्ता साहित्य में दिखाई देने लगी। ऐसे देश में जिसमें औरतें एक लोटा पानी व्यर्थ करने पर बच्चों को पीट देती हों, सुषमाजी अपनी कहानी 'जल के लिए जालसाज़ी' में सन्देश देती हैं कि देश को स्मार्ट सिटी से अधिक पानी चाहिए। कहानी के ये दृश्य हम शहर में आते-जाते या मीडिया में देखते रहते हैं कि ग़रीब बस्तियों में या गाँवों में टैंकर आया तो किस तरह औरतें-बच्चे लोटे, बाल्टी, कलश व पीपे लिए उसे घेर लेते हैं। जब इनका सब्र ख़त्म होने लगता है तो शुरू हो जाता है आपस का झगड़ा। इस कहानी से ही इन पानी के टैंकरों से जुड़ी कथाएँ पता लगती हैं। मसलन ग़लती से किसी सेक्टर के स्थान पर पानी दूसरी जगह पहुँचा दिया जाता है, लड़के बाइक पर आकर पानी चोरी कर लेते हैं या इन टैंकर वालों पर ही चोरी का इलज़ाम लगा दिया जाता है। इस विद्रूपता पर क़रारा व्यंग्य ये है कि पानी से भरे ट्रैक्टर की चोरी की एफ़आईआर करने जाना पड़ता है और अब तक ऐसी चोरी के लिए क़ानून नहीं बना है।

एस. आर. हरनोट की 'एक नदी तड़पती है' को पढ़कर केरल की प्रोफ़ेसर के. वनजा, जो अपनी थ्योरी इको-फ़ेमिनिज़्म के लिए विख्यात हैं, की बात याद आ गई कि ये व्यवस्था पर्यावरण व स्त्री को नोंच-खसोट डालती है। पर्यावरण में नदी भी शामिल है। हरनोटजी विलुप्त होती नदी के कारण गिनाते चलते हैं सुनमा के माध्यम से। कुछ उम्र होने पर जैसे स्त्री में धीरज आ जाता है वैसे ही नदी पर बाँध बन जाता है। बहुत-से लोगों की ज़मीन ख़रीद ली जाती है। अब तक सुनमा, सुनमा दादी बन गई है लेकिन उसका मन उजाड़ रहता है जैसे गाँव के लोगों से बाँध ने उनका बहुत कुछ छीन लिया है। बहुत-से लोग गाँव से पलायन कर गए। धीरे-धीरे नदी की एक-एक बूँद का सौदा हो गया। गाँव के इन विस्थापितों को शहर में पूरी तरह पनाह कहाँ मिली? वे कुछ वर्ष बाद ही शहर से चिलचिलाती धूप में, जलती सड़क पर पैदल चलते अपना सामान, बच्चों को कंधे पर लटकाए अपने घरौंदों की तरफ़ लौटने लगे-- जहाँ सुनमा दादी जैसी औरतें उन्हें ख़ुशी-ख़ुशी पनाह देने को तत्पर बैठी थीं।

कमलेशजी ने पानी की समस्या का एक बिलकुल ही नया कोण प्रस्तुत किया है अपनी कहानी 'गंगई महारानी' में, जो चमत्कृत करता है। हर नदी से मल्लाहों का जीवन जुड़ा होता है। ये नदी ही उनकी रोज़ी-रोटी होती है। वे इस घाट से उस घाट लोगों को पहुँचाते हैं लेकिन फेरी का ठेका भी सरकार देती है रघुनाथ मिश्रजी जैसे किसी दबंग के हाथ। एक मल्लाह की पत्नी ललिता को अपने नेतृत्व में सभी औरतों को लेकर नाव चलाने उतरना पड़ता है। मिश्र के नाव खेने वाले बदमाश उसे नदी में डुबोने की धमकी देते हैं। तो उनमें से एक देवंती बुआ के उत्तर का अंश है, "मल्लाहिन की दूसरी माँ होती है नदी। डुबोने वाले को

ही जल समाधि दे देंगे हम।"

अनुपम मिश्र बरसों पहले से कहते रहे कि भारतीयों को नदियों की उपासना के साथ-साथ उनका सम्मान व संरक्षण करना पड़ेगा। मनोज कुमार पांडेय की कहानी 'पानी' शहरवालों के लिए एक पाठ है कि किस तरह पानी से छलछलाते गाँव के पानी को पैसे और शक्ति के दम पर बर्बाद किया जाता है। उस साफ़-स्वच्छ पानी को बना दिया जाता है मौत का सौदागर या बीमारी का अजगर। तालाब को पाटने वाले गाँव के धनी मगन भाई जैसे लोग कैसे साज़िश रचकर उन लोगों को पुलिस से पकड़वा देते हैं जो तालाब पाटने का विरोध करते हैं।

हरनोटजी विलुप्त होती नदी के कारण गिनाते चलते हैं। मनीषजी ने सूखते तालाबों के कारण गिनाए हैं, संजीवजी अलोप होती (की जाती) नदियों की तरफ़ इशारा करते हैं। ये अलोप हो रही हैं बाँधों के कारण। उन बाँधों पर क़ब्ज़ा कर लेते हैं दबंग लोग, सारा इलाक़ा पानी का मोहताज हो जाता है या फिर लोगों को पानी ऐसे मिलता है जैसे कृपा की जा रही हो। यहाँ आइंस्टाइन की थ्योरी प्रतिपादित हो रही है। कोई भी समस्या एकांगी नहीं होती–हर चीज़, दूसरे से जुड़ी होती है। पानी की कमी का असर बाघों पर भी पड़ रहा है। संजीवजी की कहानी 'प्रेतमुक्ति' में जब जंगल में जानवर मर रहे हैं तो बाघों को तो मरियल होना ही है। उस पर पोचर्स उनकी खाल के लिए उन्हें मारे दे रहे हैं।

इन सब में मीनाक्षी स्वामी की कहानी 'धरती की डिबिया' मोती-सी चमचमाती व राहत देती है कि कोई तो है जो अपने स्वार्थों से हटकर तालाब खुदवाने व कुएँ खोदने में लगा है बिलकुल अनुपम मिश्र की तरह। यदि वे जीवित होते तो हम सब पूछते कि क्या आप भी बचपन में बरसते पानी की तार पर लाइन बनाती बूँदों से आकर्षित होकर उसे किसी माचिस की डिबिया में बन्द करने की कोशिश करते थे?

पर्यावरण संरक्षण के लिए वडोदरा में स्थापित संस्था इंटरनेशनल सोसायटी ऑफ़ नेचुरलिस्ट के स्थापक जी.एम. ओझा की अवधारणा थी कि भारत में वैसे कोई अच्छी बात नहीं मानता लेकिन यदि उसे धर्म से जोड़ दिया जाए, तो श्रद्धा से उस नियम का पालन करते हैं। पेड़ काटे नहीं जाएँ, इसलिए ये कहा जाने लगा कि पेड़ों में भगवान का वास होता है। स्वाति तिवारी भी अपनी कहानी 'पानी' से सन्देश देती हैं कि यदि पानी से भरा जलाशय नहीं होगा तो पिता की आत्मा की शान्ति के लिए तर्पण कैसे होगा?

सम्पादक द्वय की तारीफ़ ज़रूरी है क्योंकि इन्होंने पानी से जुड़े हर पहलू पर कहानियाँ सम्मिलित की हैं। 'कुईयाँजान' की लेखिका नासिरा शर्मा ने अपनी कहानी 'हथेली में पोखर' द्वारा गहरी पड़ताल की है कि किस तरह पानी की कमी सम्बन्धों पर प्रभाव डालती है। लोग मिलने से, सम्बन्ध बनाने से कतराते हैं कि कहीं कोई एक बाल्टी पानी न माँग ले। शहरों में पानी ग़ायब होता जा रहा है, जैसे बहुमंज़िली इमारतों में कुछ वर्ष बाद स्वीमिंग पूल से पानी। इसमें शहर को आमंत्रण एक सन्देश

भी है कि लोग अवकाशप्राप्ति के बाद यदि गाँवों में लौटें, उसके विकास की तरफ़ ध्यान दें तो वहाँ कैसे पानी नहीं छलछला सकता या गाँवों का विकास कैसे नहीं हो सकता है!

'बिन पानी डॉट कॉम' में पंकज मित्र ने कल्पना की है कि वो दिन दूर नहीं कि लोग झरनों व इठलाती नदियों की फ़ोटो देखकर दिल बहलाएँगे। बाज़ार में पानी बेचती कम्पनियाँ कैसे फुसलाएँगी कि उनका पानी सबसे शुद्ध है। ये ज़माना तो आ ही चुका है लेकिन बंगलुरु जैसे महानगरों में चौराहों पर लगे प्रदूषण सूचकों को देखकर लगता है वह दिन भी दूर नहीं जब शुद्ध हवा के लिए 'हवा हवाई डॉट कॉम' भी शुरू हो जाएँगे।

पंकजजी ने यही लिखा है कि तालाब व कुएँ भरवा दिए जाएँगे। हैंड पम्प उखड़वा दिए जाएँगे तब पानी कब तक पृथ्वी पर सुरक्षित रह पाएगा?

ऋषिकेश सुलभ की कहानी सच ही अपनी आँचलिकता से, अपने सोंधेपन से मन को गुदगुदाती है। नदी का पेट कितना उपजाऊ होता है, ये किसी फ़्लोटिंग गार्डन को देखकर ही पता लगता है, जिसकी नहर नदियों के पानी को सींचकर बनाई होती है किसी भी नदी का जब रास्ता रोका जाता है तो क्या होता है? स्त्रियाँ क्यों नदियों को पूजती हैं? इसका उत्तर मिल जाएगा।

इस संग्रह में कुछ कहानियों में पानी से जुड़े भावनात्मक रिश्तों की बात है। जैसे ममता सिंह की 'तुझी मी वाट पाहते', कृष्ण बिहारी की 'डुबकी' व गोविन्द सेन 'बयरी माँ'। कहानी ममताजी ने बेहद ख़ूबसूरती से समुद्र (समुद्र भी तो पानी का एक रूप है) के सौन्दर्य व भयावहता को रचा है। भयावहता ऐसी कि कहीं उसकी रेत दलदल बनकर लोगों की जान ले लेती है और एक प्रेमिका अपने प्रेमी के डूबने वाले दिन हर बरस उसी समुद्र तट पर आती है इस ख़ुशफ़हमी में कि वह अब भी ज़िन्दा है। कृष्ण बिहारी की कहानी में गाँव की एक छोटी बच्ची है जो अपने-आप पाँच वर्ष की आयु में अच्छी तैराक बन जाती है। किसी दीवानगी की हद तक नदी को प्यार करती है।

हमारे जीवन में बचपन में कितने ही लोग हम पर प्यार लुटाने वाले आते हैं, हम उस समय ध्यान नहीं देते। इसी तरह गोविन्द सेन का नायक बड़े होकर गाँव की ऐसी 'बयरी माँ' को याद करता है जो हमेशा पानी भरने में उसकी सहायता करती थी। बड़े होकर उसे अफ़सोस होता कि जिस औरत को बहरी होने के कारण ही बयरी नाम रख दिया था, वह कभी उसका असली नाम क्यों नहीं पूछ पाया?

यह कहानी-संग्रह देश के दिग्गज मनीषियों द्वारा पानी के हर पहलू पर विमर्श, इसमें बढ़ते जा रहे प्रदूषण व इसके अलोप होते जाने की चिन्ता का दस्तावेज़ है। ❑

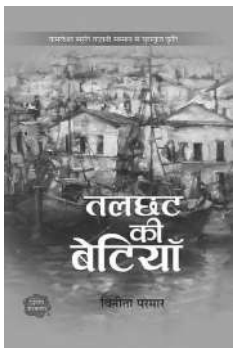
(कृति : 'पानी हाट बिकाय' ; सम्पादक : सुषमा मुनीन्द्र/नीलाभ कुमार ; प्रकाशक : वनिका प्रकाशन, एन.ए.-168, गली सं. 6, विष्णु गार्डन, नई दिल्ली-110018 ; पृष्ठ : 200 ; मूल्य : 430 रुपये)



स्मिता सिन्हा

ख़ूबसूरत बिम्बों से सजी कहानियाँ

सहज लेखन दरअसल क्या होता है! अपनी स्वीकृति और ख़ारिज होने के भय से मुक्त, अपनी नैसर्गिकता और अनगढ़ता के साथ अपने प्राप्य के लिए सतत प्रयत्नशील, अपने वातावरण के प्रति सजग, चौकस और विचारधाराओं के प्रति तटस्थ।



समकालीन लेखन के परिप्रेक्ष्य में विनीता परमार एक उभरता नाम है। अभी हाल ही में इनका कहानी-संग्रह 'तलछट की बेटियाँ' प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में 'घोषा', 'कोख पर क़ैची', 'इमोजी', 'विसर्जन' और 'अश्वमेध का घोड़ा' सहित चौदह कहानियाँ हैं।

सफ़ेद दाग़ वाली स्त्री को केन्द्र में रखकर बुनी गई कहानी है 'घोषा'। विनीता की घोषा और उस ऋषिपुत्री घोषा में कितना साम्य..... एक तरल संवेदनशीलता के बावजूद पत्थर की तरह सख़्त जिजीविषा। तब भी ऋषिपुत्री घोषा को देह के तल से अलग होकर किसी ने नहीं देखा, आज भी जाने कितनी घोषा इसी देह के अँधेरे गर्त में विलीन हो गईं। ख़ूबसूरत बिम्बों से सजी बेहद गम्भीर विषय को लेकर सृजित एक शानदार कहानी 'घोषा' बड़ी ही मुखरता से बताती है कि एक लेखक की सोच कल्पनाशीलता से परे भी कितनी प्रखर हो सकती है। कितने मानकों को तोड़कर एक नए मानक को स्थापित करने का माद्दा रख सकती है। अपने छोटे-से नैरेटिव में एक साथ कितनी कोमल, कितनी कठोर और कितनी चेतनाशील हो सकती है।

समकालीन लेखन में सबसे बड़ा ख़तरा विषय के दोहराव का है। विनीता इसी बिन्दु पर खुद को भीड़ से अलग रखकर चल रही हैं। उन्होंने अपने लेखन के शुरुआती दौर से ही यह स्पष्ट कर दिया

सम्पर्क : *ई-मेल : smitaminni3012@gmail.com*

कि स्त्री-विमर्श के नाम पर देह-विमर्श से इतर भी कई मुद्दे हैं, जिन पर बेबाकी से लिखा जाना ज़रूरी है। दो पाटों के बीच पिसता मन है, व्यक्ति है और है समाज, जिसकी अपनी विसंगतियाँ और विडम्बनाएँ हैं, जिनके अपने कुछ सपने और सरोकार हैं । ऐसी ही एक सुन्दर कहानी है, 'लाल पाड़ वाली पीली साड़ी'। क्षेत्रीयता, भासा, देस, दुआर और परब के बीच रची गई इस कहानी में कच्ची मिट्टी का सोंधापन भी है और दामोदर का उफान भी। कथानक इतनी तल्लीनता से रचे गए हैं कि पढ़ते हुए जाने कितनी बार इसमें उपन्यासिका का विस्तार दिखा। सुगनी का दुःख सारी स्त्रियों के साझे दुःख के पुल के रूप में प्रतिबिम्बित होता है, जिस पर चलकर कुछ तो पार पा गईं अपनी नियति से, कुछ वहीं भँवर में फँसकर गुम हो गईं हमेशा के लिए। सहज प्रवाह के बावजूद कुछ है जो आपके पैरों को रोकता है आगे बढ़ने से। अंत की आहटों को शुरू से ही जानते-समझते हुए भी आप अपनी आँखों से कहानी के उस अंत को देखना चाहते हैं, जो द्रवित भी करती है और हठात् भी। दामोदर की लहरों में आप देर तक देखते रह जाते हैं सुगनी को डूबते कहीं गहरे, बहुत गहरे तक..... ठहर जाते हैं उन परिदृश्यों में देर तक। एक बेहद सजग और प्रभावी कहानी, जिसके शब्द यथार्थ के धरातल पर ख़ूब ठोक-पीट कर गढ़े गए हैं जिसके कथन में लेखक के अनुभव सहज ही परिलक्षित हो रहे हैं।

अगर तय मात्रा से अधिक आर्सेनिकयुक्त भूजल लम्बे समय तक खान-पान में इस्तेमाल हो तो शरीर के अंग बीमार पड़ने लगते हैं। कैंसर होने का ख़तरा बढ़ जाता है। त्वचा पर ख़ासकर हथेलियों, पीठ और पैर के तलवों पर गहरे रंग के दाग़ और चकत्ते उभरने लगते हैं। चूँकि लेखिका स्वयं भी विज्ञान की विद्यार्थी रह चुकी हैं, अतः इस समस्या की वीभत्सता को बख़ूबी समझ पा रही हैं। वैज्ञानिक नज़रिए और सामाजिक विमर्श की सार्थक घनिष्ठता हम शीर्षक कहानी 'तलछट की बेटियाँ' में देख सकते हैं। पानी का ख़त्म होना और इस वजह से गाँव से लोगों का पलायन जैसे विभीषिका को सामने लाते हुए विनीता अत्यंत कुशलता से कथानक को बुनती हैं, जो ज़हरीले पानी के कारण शादी न हो पाने की कारुणिक स्थितियों को बयान करती है।

ऐसी ही एक और कहानी है 'कोख पर क़ैंची'। पिछले दिनों महाराष्ट्र के मराठवाड़ा ज़िले के अकाल पीड़ित 'बीड' क्षेत्र में शल्य पद्धति से गर्भाशय निष्कासन की ख़बर ने ख़ूब हलचल मचाई थी। राज्य सरकार द्वारा दिए गए आँकड़ों के अनुसार वर्ष 2016 से 2019 के बीच तक़रीबन 4,605 महिलाओं का गर्भाशय निकाला गया। 'ह्यस्टेरेक्टमी' यानी 'गर्भाशय निष्कासन' की यह दर अन्य राज्यों की तुलना में चौदह गुना अधिक थी। ठेकेदारों द्वारा काम कर रही महिला-मज़दूरों का गर्भाशय इन वजहों से निकलवा दिया जाता कि उन्हें माहवारी न हो एवं वे गर्भवती न हो जाएँ और काम में रुकावट न हो या उन्हें कोई छुट्टी न देनी पड़े। विनीता की इस कहानी में भी औरत की कोख इसलिए निकाल दी जाती है कि वो बिना

किसी रुकावट के गन्ने के खेत में कटाई का काम कर सके। माहवारी और गर्भावस्था का असर उसके काम पर नहीं पड़े। यह कहानी एक त्रासदी, एक सच्चाई है जिससे आज भी सुदूर प्रान्त की स्त्रियों को गुज़रना पड़ता है। यह कहानी घटना के विवरण से ज़्यादा ग़रीब और वंचित स्त्रियों के अधिकारों और उनके सपनों को चिह्नित करती है।

विनीता की कहानियों का सबसे मज़बूत पक्ष उसका मनोवैज्ञानिक और तार्किक स्तर पर सुदृढ़ होना है। विज्ञान, इतिहास और लोक का समावेश इनकी कहानियों को सचेत एवं सहज बनाता चलता है। 'इमोजी' और 'अश्वमेध का घोड़ा' ऐसी ही दो दमदार कहानियाँ हैं। बहुत सम्भव है कि इन कहानियों को पढ़ते हुए पाठक उलझ जाए। पुनर्पाठ इन कहानियों की अनिवार्य माँग है, ताकि पाठक दृश्यों में बढ़ते हुए अदृश्य वस्तुस्थितियों के समानांतर भी चल सकें। 'इमोजी' ऐसी ही एक कहानी है जिसमें लेखिका ने सदियों से उठते चले आए प्रश्नों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सन्दर्भित किया है। बात चाहे 'महाभारत' के चक्रव्यूह की हो या क़ैजुअल चैटिंग के इमोजी की। मानव के प्रेम-व्यवहार और उसकी परिणिति अवश्य प्रभावित होती है। वर्चुअलिटी जीवन का वास्तविक और अपरिहार्य हिस्सा बन गई है। कहानी में जिस तरह से शब्दों को गढ़ा गया है, वह हमारी ख़ुद की अनुभूति लगती है। जैसे मिसेज़-मिस्टर चैटर्जी कोई किरदार नहीं हम ही हैं, जो यशी और अंबर के बहाने रूपक बनकर उन सभी प्रश्नों के जवाब ढूँढ़ रहे हैं जो शोध प्रश्नावली में शामिल हैं।

इसी सन्दर्भ में 'अश्वमेध का घोड़ा' का ज़िक्र भी ज़रूरी है, जिसकी सांकेतिकता में एक यातनामय स्वर भी है और आशावाद की दृष्टि भी। मनोवैज्ञानिक परख की एक बहुत मज़बूत कहानी है 'अश्वमेध का घोड़ा'। कहानी के केन्द्र में है अकेले बच्चे की एकाकी मनोवृत्ति, उसकी वैचारिक जद्दोजहद, उसका अंतर्द्वन्द्व, बेचैनी और भय। इस तरह के उलझे जीवन को इतने सरल तरीक़े से सामने रखना यक़ीनन क़ाबिलेतारी फ़ है। कहानी के मूल में ऐतिहासिक वृत्तियाँ हैं जो आज के जीवन, परिवेश और वातावरण में भी क्रियाशील हैं। बीता हुआ सच प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जगह-जगह नज़र आता है। संवेदनाएँ जो कभी तो विकृत और खण्डित होती हैं, चेताती हैं समाज में उभर रहे ख़तरनाक माहौल को लेकर, तो दूसरे ही पल शान्त, स्थिर और उम्मीद से भरपूर जीवन को लेकर आशावादी नज़रिया अपनाती दिखती हैं। वैयक्तिक महत्वाकांक्षा की आड़ में ह्रास होते सामाजिक मूल्यबोध को अनुमोदित करती इस कहानी को विनीता की सिग्नेचर कहानी कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, क्योंकि यह कहानी अपने हर पुनर्पाठ के साथ-साथ वैचारिक ज़मीन पर जीवन की कई-कई परतें खोलती दिखती है।

वर्जनाओं के आवरण में पली-बढ़ी एक स्त्री जब पूरी चेतना और हिम्मत से स्त्रियों के लिए तय मानकों को तोड़ती है, तब 'विसर्जन' जैसी सुन्दर कहानी का जन्म होता है। स्त्री मनोदशा पर बहुत ही मज़बूत और संवेदनशील कहानी, जिस पर लेखिका

ने बड़ी मुखरता से क़लम चलाई है। महिलाओं के स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं को कभी विमर्श का मुद्दा बनाया ही नहीं गया। सार्वजनिक स्थल पर शौचालय की कमी या सार्वजनिक शौचालय का गन्दा होना या उनकी दीवारों पर अश्लील चित्रों व फब्तियों का होना... घर से बाहर निकली हर स्त्री को इस स्थिति से कभी-न-कभी गुज़रना पड़ता है। बावजूद हम चुप रह गए, क्योंकि हमने यह ख़ुद ही तय कर लिया कि स्त्रियों के लिए ये स्थितियाँ बेहद सामान्य हैं। इस संग्रह की सबसे पहली कहानी 'विसर्जन' देर तक पाठकों को अपने पास रोके रखती है। शौचालय के अभाव में ग्रामीण क्षेत्रों की किशोरी लड़कियों का स्कूल छोड़ना आम बात है। दफ़्तर या सुदूर इलाक़ों में महिलाओं के शौचालय को कभी सोच का हिस्सा नहीं बनाया गया। हाशिए पर रखे गए या यूँ कहें कि बिल्कुल ही नज़रअंदाज़ किए गए। इस विषय को केन्द्र में रखकर लेखिका ने न सिर्फ़ समाज और शासकीय दोहरेपन को उधेड़ा है, बल्कि शौचालय की कमी से दो-चार होती स्त्रियों के शारीरिक और मानसिक ऊहापोह को बख़ूबी सामने रखा है।

हालाँकि विनीता परमार की सभी कहानियाँ लेखन के मानकों से न्याय करती दिखीं। बावजूद 'मायका' और 'तबादला' कहानियों में थोड़े और विस्तार की गुंजाइश थी। इन्हें पढ़ते हुए पाठक थोड़ा और, थोड़ा कुछ और, बोध से घिरा ही हुआ होता है कि हठात् से कहानी ख़त्म हो जाती है। ये दोनों कहानियाँ लघु और सूक्ष्म कहानी के बीच कहीं टिकी भी दिखती हैं। लघुता के पैमाने पर कहानी का एक निश्चित आख्यान है, जो इतना छोटा है कि एक बैठक में कहा जा सके जबकि सूक्ष्मता की दृष्टि से देखें तो कहानी के नेपथ्य में ढेरों दृश्य बनते-बिगड़ते दिखते हैं। बावजूद कथानक, किरदार, संवाद, वस्तु-स्थितियाँ, कथोपकथन और वातावरण निश्चित रूप से थोड़ा और फैलाव, थोड़ा और सन्दर्भ माँगते दिखते हैं। ❑

(कृति : 'तलछट की बेटियाँ' (कहानी-संग्रह); लेखिका : विनीता परमार ; प्रकाशक : रुद्रादित्य प्रकाशन, 190एच/आर/3-एम ओ.पी.एस. नगर, कालिन्दीपुरम, प्रयागराज-211011 (उ.प्र.); पृष्ठ : 127; मूल्य : 185 रुपये)

आवश्यक सूचना

चंदा भेजने और चंदे के बारे में पूछताछ के लिए अथवा पत्रिका प्राप्त न होने की स्थिति में कृपया निम्न पते पर सीधे सम्पर्क करें–

पता : सम्पादक (प्रसार)
प्रकाशन विभाग, कमरा नं.
779, सूचना भवन, सी.जी.ओ.
कॉम्पलेक्स, लोदी रोड,
नई दिल्ली–110003
फ़ोन नं. : 011–24367453
ई–मेल : pdjucir @ gmail.com



भावना शेखर

नैसर्गिक गुणों का उद्घाटन

'रामायण' की अलक्षित-सी पात्र उर्मिला को हम केवल एक त्यागमयी स्त्री के रूप में जानते हैं जिसने पति लक्ष्मण के कर्त्तव्य निर्वहन में पूरा योगदान दिया। उसने सीता की तरह पति के साथ वन जाने का अधिकार नहीं माँगा बल्कि सास-ससुर की सेवा के लिए लक्ष्मण का विकल्प बनकर एक तपस्विनी की तरह महल में ही रह गई। लक्ष्मण की अनुपस्थिति में पिता के आमंत्रण को न स्वीकार कर एक कर्त्तव्यनिष्ठ वधू का दायित्व निभाया।



इन प्रचलित तथ्यों के परे उर्मिला के अंतर्मन का, उसके स्वभाव और अनुद्घाटित नैसर्गिक गुणों का उद्घाटन किया है लेखिका आशा प्रभात ने अपने सद्यःप्रकाशित उपन्यास 'उर्मिला' में।

बचपन और किशोरावस्था में वह साहसी, हठी, चपल, न्यायप्रिय और अधिकारों के प्रति सचेत कन्या थी- इसके अनेक उदाहरण उपन्यास में दिखते हैं।

वनवासियों के कष्ट और पीड़ा को सुनकर पिता जनक से उनकी सुख-सुविधा के लिए नीति बनाने का आग्रह करने वाली जागरूक राजकुमारी उर्मिला ही थी। लेखिका ने उसके चरित्र निर्माण में तरुणी-सुलभ प्रवृत्तियों को दर्शाया है। सबसे समझदार बेटी सीता के प्रति जनक के अनन्य प्रेम के कारण वह ईर्ष्या में दग्ध रहती है किन्तु उसी सीता का स्वयंवर होने के बाद काकी से पूछती है क्या एक ही घर में दो बहनें ब्याही जा सकती हैं क्योंकि उपवन में लक्ष्मण को देखते ही उसके मन में प्रेम का अंकुरण हो चुका है।

सम्पर्क : *ई-मेल : bhavnashekhar8@gmail.com*

विवाह के पूर्व जनकपुर में बीती किशोरावस्था की घड़ियाँ, घटनाएँ, वहाँ की राज-व्यवस्था और नीतियों के प्रति उर्मिला की मुखरित प्रतिक्रियाएँ पाठकों के सम्मुख उसका एक नया बिम्ब गढ़ती हैं।

जैसे संजय ने धृतराष्ट्र को 'महाभारत' का युद्ध दिखाया। वैसे ही उर्मिला ने पाठकों को राम के वनगमन के बाद अयोध्या के महल में घटित घटनाओं का दर्शन कराया है। दशरथ की मृत्यु और छह दिनों तक दाह-संस्कार हेतु भरत की प्रतीक्षा, शव को सुरक्षित रखा जाना, भरत के आने पर कैकेयी पर कुपित होना आदि घटनाएँ पाठक उर्मिला की स्मृतियों के माध्यम से देखते हैं।

वह याद करती है राज्याभिषेक के दिन सुबह-सुबह लक्ष्मण का प्रसन्न होना, मंथरा द्वारा कैकेयी की बुद्धि भ्रष्ट करना, वनवास की घोषणा आदि घटनाएँ। लक्ष्मण के साथ मधुयामिनी के दृश्य विरहिणी उर्मिला को आनंदमय अतीत में ले जाते हैं।

एक चंचल मुखरित साहसी बालिका बाद में उत्तरदायित्व निभाने के लिए अयोध्या के महलों में विरही जीवन काटते हुए दीदी मांडवी के दुख को दूर करने का प्रयास करती है। वह भरत को वापस महल में लाने के लिए नन्दीग्राम जाती है। ये घटनाएँ उसके चरित्र की दृढ़ता और उदात्तता को प्रतिपादित करती हैं।

अश्रु दुख की सहज परिणति है। किसी भी मनुष्य के लिए आँसुओं की वर्जना अत्यंत कठिन कार्य है किन्तु लक्ष्मण के वन गमन पर और उसके बाद विरह में भी सद्यःपरिणीता उर्मिला को आँसू बहाने की छूट नहीं थी।

उर्मिला का अतीत कभी व्यतीत नहीं हुआ। राम के वन गमन के बाद जनक द्वारा उर्मिला के लिए जनकपुर आने का संदेश उर्मिला को पीड़ित करता है। उसे लगता है यदि पिता की इच्छा थी तो हम तीनों बहनों को बुलाते क्योंकि मांडवी का दुख मुझसे कम नहीं जिसके पति भरत महल से दूर नन्दीग्राम में हैं जैसे मेरे पति लक्ष्मण पंचवटी में हैं। सबकी व्यथा एक-सी है फिर मुझ पर तो राजमहल और राजमाताओं की ज़िम्मेदारी सौमित्र खुद सौंपकर गए हैं। यहाँ उर्मिला का चरित्र निस्पृहता और निस्वार्थता की पराकाष्ठा को छूता है।

उपन्यास में जनकपुर और अयोध्या दोनों सन्दर्भों में उर्मिला के माध्यम से तत्कालीन आर्य-परम्परा, प्रजावत्सल-राजव्यवस्था, त्याग तपस्या सहिष्णुता साहस परोपकार जैसे आदर्श गुणों का परिचय मिलता है।

भरत के लौटने पर सभी माताओं और बन्धुओं को लेकर राम, सीता और लक्ष्मण को वापस लाने के लिए चित्रकूट जाना, बड़ी माँ के आग्रह के बावजूद उर्मिला की देखा-देखी मांडवी और श्रुतिकीर्ति का भी आगत बन्धुओं के स्वागत की तैयारी हेतु महल में रुक जाना–भारतीय संस्कृति की उदात्तता और नव-परिणीताओं के संयम का द्योतक है।

विभिन्न घटनाओं को पात्रों के अनुरूप भाषा और शिल्प में सफलतापूर्वक गढ़ा गया

है। अहल्या का प्रसंग उपन्यास की विशेष अवांतर कथा है। अरण्यवासी के मुख से गौतम ऋषि के आश्रम में देवी अहल्या के अकेले रह जाने की कथा सुनकर उर्मिला आक्रोशित हो जाती है। गौतम, अहल्या और इंद्र की प्रचलित कथा के माध्यम से लेखिका ने उर्मिला और काकी का लम्बा वार्तालाप रचकर वास्तव में स्त्री दशा या कहें तो नारी विमर्श को केन्द्र में रखा है। इंद्र द्वारा अहल्या से छल की घटना में अहल्या की स्वीकारोक्ति दर्शा कर लेखिका ने एक ओर क्रान्तिकारी तथ्य प्रस्तुत करने का साहस किया, दूसरी ओर गौतम ऋषि को शाप देने की कठोरता से बरी किया है।

एक और महत्वपूर्ण बिन्दु उठाया गया है। गौतम ऋषि बार-बार पत्नी से पुत्र प्राप्ति की इच्छा और संकल्प करते हैं। अहल्या त्रस्त होकर एक बार सहयोग नहीं करती और पुत्री को जनमती है, जिस पर पति गौतम कुपित हो जाते हैं। यह प्रकरण समाज में पुत्र की प्रबल आकांक्षा को दर्शाता है। ब्रह्मतेज सम्पन्न ऋषियों तक में पितृसत्ता के वर्चस्व का आग्रह था।

इस प्रसंग में पुंसवन संस्कार का उल्लेख है जिसमें पुत्र प्राप्ति के लिए कुछ औषधियों के अर्क़ द्वारा गर्भ में ही लिंग परिवर्तित कर दिया जाता था। यह तथ्य प्राचीन भारत में चिकित्सा पद्धति की विस्मयकारी प्रगति की सूचना देता है। गौतम ऋषि अहल्या के सहमत न होने पर भी इस औषधि का सेवन करा कर तीन पुत्रों को जन्म दे चुके थे, लेकिन चौथी बार अहल्या के द्वारा औषधि का बहिष्कार करने पर पुत्री अंजनी का जन्म हुआ और इसके विस्फोटक परिणामस्वरूप ऋषि गौतम ने देवी अहल्या को प्रताड़ित किया।

गौतम आश्रम में ऋषि पत्नियों से यह सब सुनकर उर्मिला का हृदय अपने पिता जनक के प्रति अगाध श्रद्धा तथा गर्व से भर उठता है कि एक नृपति होते हुए भी उन्होंने प्रकृति के विरुद्ध जाकर पुत्र की कामना नहीं की।

निस्सन्देह उपन्यास लेखिका की पूर्व रचित 'मैं जनक नन्दिनी' की तुलना में मर्मस्पर्शी और भावना प्रधान नहीं है। कारण कि, सीता के जीवन की तरह उर्मिला के जीवन में घटनाओं का वैविध्य और भावनाओं की बहुवर्णिता भी तो नहीं। उपन्यास के अर्धांश में जनकपुर का वातावरण है। वैदिक संस्कृति, पौराणिक मान्यताएँ, ऋषियों का जीवन और आर्य समाज की शास्त्रीय विवेचना है। इन विषयों की उपस्थापना में लेखिका का गहन शोध और अथक परिश्रम प्रतिबिम्बित होता है। उपन्यास आर्य संस्कृति का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ बन गया है जो अतीत के प्रति भ्रमित हो रही पीढ़ी और आज के समय की माँग भी है। ❑

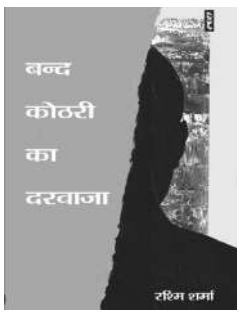
(कृति: 'उर्मिला' (उपन्यास); लेखिका: आशाप्रभात; प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग; दरियागंज, नई दिल्ली-110002; पृष्ठ: 247; मूल्य : 299 रुपये)



कुमारी उर्वशी

आधुनिक भारत की जीवन दर्शाती कहानियाँ

रश्मि शर्मा द्वारा रचित 'बन्द कोठरी का दरवाज़ा' उनका पहला कहानी-संग्रह है। लेखिका के 'नदी को सोचने दो', 'मन हुआ पलाश', 'वक़्त की अलगनी पर' जैसे कविता-संग्रह आ चुके हैं। कहानी-संग्रह 'बन्द कोठरी का दरवाज़ा' की 12 कहानियों को आधुनिक भारत में जीवन को देखने का ज़रिया माना जा सकता है। कहानियों में विषय-वैविध्य है तथा हर कहानी भिन्न परिवेश और चरित्रों के साथ रची गई है। इनके इस कहानी-संग्रह की ख़ासियत यह है कि हर किरदार से पाठक अपने-आप को जोड़ लेता है। पढ़ने वालों को कहानियों में जीवन्त किरदार मिलते हैं जिनसे पाठक आत्मीयता स्थापित कर पाता है। भाषा शैली भी इतनी सहज है कि जैसे पात्र वैसी भाषा। शैली और शिल्प के प्रयोग ने इन्हें विशिष्ट कथाकारों की पंक्ति में ला खड़ा किया है। कहानियों में भाषा की प्रवीणता पाठक में रोचकता बनाए रखती है तथा कहानियाँ वास्तविकता के करीब प्रतीत होती हैं।



'महाश्मशान में राग विराग' एक युवती की कथा है जो गंगा घाट के किनारे बैठी डल झील और चनाब को भूल नहीं पा रही है। उसे अतीत अपनी ओर खींच रहा था जिसकी वजह से वह वर्तमान को रोककर रखना चाहती थी। वह महसूस करती है कि अकेलेपन से बड़ा दुख कोई और नहीं है। चाहती है कि कोई उसके पास से कहीं दूर ना जाए वह अपने हर रिश्ते और अतीत की स्मृतियों को बचाना चाहती है। डल झील पर शिकारे में घूमने, कमल के फूल को छूने और चिनार के लाल पत्तों पर चलने की ख़्वाहिश मिटती नहीं है। अपने बचपन के मासूम और अल्हड़ दिनों में डल झील की सतह पर तैरती हाउसबोट पर गुज़ारे पल और अब गंगा की

सम्पर्क : *ई-मेल : urvashiashutosh@gmail.com*

धारा पर हिचकोले खाती नाव की सैर अलग होकर भी उसके लिए अलग नहीं हैं। गंगा नदी से डल झील को जोड़ती उन अदृश्य तरंगों को वह महसूस करती है और सुख पाती है। हालाँकि कश्मीर पहले-सा नहीं रहा है। चारों तरफ़ फ़ौज-ही-फ़ौज भरी है। हाउसबोट और शिकारों से भरी डल झील की ख़ूबसूरती भी अब सहमी हुई-सी लगती है। उसके बचपन की वह ख़ूबसूरत अलिफ़ा हाउसबोट जिसके पर्दे पर लाल-लाल फूलों के प्रिंट हुआ करते थे, अब नहीं है। खोजने पर भी उसे अंकल, आंटी और जावेद का ठिकाना नहीं मिलता। वह सूफ़ी-संत नूरुद्दीन नूरानी की दरगाह में हाज़िरी लगाने चली जाती है, जहाँ हिन्दू और मुस्लिम दोनों की श्रद्धा है। मन्नत के रंगीन-धागे उस की बचपन की ख़्वाहिश को जोड़ने में सार्थक भूमिका निभाएँ ऐसा पाठक भी महसूस करने लगते हैं।

अगली कहानी की मुख्य पात्र एक छोटी बच्ची है जिसके मन में न्यूज़ में देखी हैदराबाद की डॉक्टर को बलात्कार के बाद जलाकर मारने वाली ख़बर गहरे बैठ गई है। इस घटना का असर उसके दिलो-दिमाग़ पर इतना गहरा है कि वह वैसे ही घटना अपने आस-पास होती महसूस ही नहीं करती, उसे सच भी मानती है। हादसे की कहानी वह कुछ इस तरह बयान करती है कि उसके आस-पास मौजूद हर किसी को यक़ीन आ जाता है। "मैंने देखा, एक सफ़ेद रंग की वैन रुकी... पीछे का गेट ख़ुला... एक आदमी बाहर आया और देखते-ही-देखते दीदी को कार के अंदर खींच लिया। मैं ज़ोर से चिल्लाई तो दूसरी तरफ़ की गेट से एक आदमी उतरकर मेरी ओर बढ़ने लगा..." बुक्का फाड़ के रो उठी नन्दिनी, जैसे वो आदमी फिर नज़दीक आ रहा हो। मैंने उसे ज़ोर से भींच लिया था और उसके बदन की थरथराहट अपनी बाँहों में महसूस कर रही थी। नन्दिनी को ढाँढ़स बँधाते हुए जैसे मैं ख़ुद को भी यक़ीन दिलाना चाहती थी कि मेरी बेटी सही-सलामत मेरे पास है।

मैं नन्दिनी की पीठ सहला रही थी... वह बहुत कुछ कहना चाह रही थी मगर सुबकने के कारण उसके शब्द लड़खड़ा रहे थे...

बच्ची की मानसिक अवस्था का माँ को एक लम्बे अरसे के बाद पता चलता है जब वह ऐसी ही घटना कई वर्षों बाद दोहराती है।

'मैंग्रोव वन' कहानी दर्शाती है कि जीवन में उतार-चढ़ाव होते ही हैं, प्रेम भी होता है। यह सामान्य प्रक्रिया है। अप्रसन्नता के कारण या स्रोत की खोज करने से आपको केवल और अधिक अप्रसन्नता ही हासिल होगी।

'सुबह कुशन के नीचे से झाँकता था एक काग़ज़ का टुकड़ा। उसी फ़िरोज़ी शॉल में ख़ुद को कसकर लपेट लिया है मैंने। लाल फूलों की रेशमी चादर है बिछी। उन्मादी हवा चल रही है। फुहारों संग उड़ रहे कुछ शब्द–'मैं आवारा हवा की तरह बहकर निकल जाऊँगा।'

प्रियम मुख्य पात्र है 'उसका जाना' कहानी का। उसकी माँ कैंसर के तीसरे स्टेज पर है और उसने अभी-अभी मास कम्युनिकेशन में दाख़िला लिया है। ग्रेजुएशन में टॉप करने की ख़ुशी भी ठीक से बाँट नहीं पाया। दाख़िले के बाद आठ-दस दिन ही क्लास कर पाया और अपनी कैंसर पीड़ित माँ के साथ दिल्ली के सफ़दरजंग अस्पताल में आना पड़ा। वह अपने कॉलेज को याद कर रहा

है। कॉलेज की एक लड़की सपना को भी। सपना से उसकी शुरुआती औपचारिकता धीरे-धीरे दोस्ती की आत्मीयता में बदल जाती है और कहानी का नायक यह महसूस करता है कि सपना के चेहरे की ख़ूबसूरती उसे माँ की याद दिलाती है। उसकी माँ बहुत सुन्दर है लेकिन जब से तबीयत ख़राब हुई है चेहरा उतर आया है। अस्पताल में माँ के पास प्रियम और उसका भाई रात को रुकते हैं। बचपन के क़िस्से सुनाकर माँ को हँसाने की और उनके जीने की पुरज़ोर कोशिश को कामयाब करने की, सहारा देने की कोशिश में लगे हैं लेकिन नियति को कुछ और ही मंज़ूर था। 'आत्मा अजर-अमर है' जैसी बातें बेहद खोखली लगती हैं, ऐसे वक़्त जबकि कोई अपना हमेशा के लिए साथ छोड़ गया हो। लोग पीठ पर हाथ धरते हैं और वापस मुड़ जाते हैं। मेरे भीतर भीषण शोर के बाद पसरी ख़ामोशी गूँज रही है। मैं माँ, सपना और रंजीता सबसे एक ही साथ लिपट जाना चाहता हूँ। तभी पापा भी सबकी तरह आकर कहते हैं—चलो, अब सब ख़त्म हुआ।"

हिन्दू मान्यताओं के अनुसार जब भी किसी शख़्स की मौत होती है तो उसका पिंडदान करने का हक़ उसके बेटे को दिया जाता है लेकिन भगवान राम ने ऐसा नहीं कर पाए थे। श्राद्ध के लिए ज़रूरी चीज़ें जुटाने के लिए भगवान राम और लक्ष्मण नगर की ओर चले गए थे उसी दौरान माता सीता ने दशरथ का पिंडदान गया में किया था।

इसी कहानी पर आधारित है कहानी 'निर्वसन', लेकिन इसका कथ्य पिंडदान से अलग हटकर पति-पत्नी के बीच के रिश्ते पर स्थित है। पति राम शंकालु है और पत्नी के प्रति बेहद सन्देह रखने वाला। पूरे जगत के लिए वह मर्यादा पुरुषोत्तम है लेकिन अपनी पत्नी के प्रति उसकी क्या व्यवस्था है जो हमेशा उसके प्रसंग में वह सन्देह व्यक्त करता है।

वृद्ध मनोविज्ञान और वृद्ध विमर्श की कथा कह सकते हैं 'घनिष्ठ अपरिचित' को। इस कहानी में एक पिता है जो पूरी उम्र एक कठोर के पिता के रूप में बच्चों के सामने है लेकिन उम्र बीतने पर वह पर्किंसन के कारण डिमेंशिया के शिकार हो जाते हैं। अपनी बहू के प्रति उनके मन में स्याह भाव बढ़ जाते हैं। वह यह महसूस करने लगते हैं कि उनकी बहू उनकी दुश्मन है और किसी के समझाने से नहीं समझते कि उनकी बहू उन्हें पिता के समान समझती है।

डायन प्रथा के बढ़ते प्रभाव के मद्देनजर झारखण्ड जैसे राज्यों ने पहले ही क़ानून बना लिए हैं। अब छत्तीसगढ़, राजस्थान और हरियाणा भी इसी राह पर हैं। कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं का कहना है कि मौजूदा कानून के तहत भी कार्रवाई की जा सकती है, मगर पुलिस इसमें कोई रुचि नहीं लेती। डायन प्रथा के नाम पर महिलाओं के उत्पीड़न की घटनाएँ रह-रहकर सर उठाती रही हैं। अन्धविश्वास के चलते औरत को डायन घोषित कर दिया जाता है। कई मामलों में सम्पत्ति हड़पने की नीयत से भी महिलाओं को डायन करार दिया जाता है। इसी मुद्दे पर कहानी है 'मनिका का सच'। इस कहानी की नायिका मनिका डायन घोषित है। जानकर आश्चर्य होगा कि स्वयं मनिका ने ख़ुद को डायन घोषित करवाया है क्योंकि पति की मृत्यु के बाद गाँव वाले उसकी इज़्ज़त नहीं बख़्शते अगर वह डायन घोषित नहीं होती। शकुन बुआ मनिका की तकलीफ़ जानती है। उसकी मृत्यु के बाद

वह बताती है कि रोज़ कोई-न-कोई उसके पास आधी रात को दरवाज़ा खटखटाने चला आता था। यहाँ तक कि सिलाई के लिए कपड़े लेकर आने वाला आदमी भी उसका फ़ायदा उठाना चाहता था। इशारों में भद्दी बातें करता। मनिका यह जानती थी कि उसकी बात पर यक़ीन करने वाला कोई नहीं है। उसकी सुन्दरता ही उसकी दुश्मन बन गई है। और वह अपने पति के बनाए घर को छोड़ना भी नहीं चाहती थी। ख़ुद को सुरक्षित रखने के लिए डायन बनने के अलावा उसके पास कोई रास्ता नहीं बचा था।

पूर्व जन्म के रिश्ते जैसी अनुभूति लिए कहानी है 'लाली'। लाली कहानी की नायिका के जेठ की बेटी है। यह बच्ची जब तीन साल की थी तब उसकी माँ की मृत्यु हो गई थी और उसके पिता सांसारिकता से विरक्त हो गए। अपनी बच्ची से भी उनका मोहभंग हो गया था। तब से कहानी के नायक ने ही लाली को सम्भाला। उसका खाना-पीना, घुमाना सब उसके चाचा के ज़िम्मे हो गया। इसलिए वह उसे पिता से बढ़कर मानती है। नायिका सौम्या को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि लाली उस पर भी पूरा अधिकार मानती है। यहाँ तक कि शादी की पहली रात भी उन्हीं के बिस्तर पर सो जाती है। लाली को जानने-समझने में नायिका भी लगी है तभी एक नया सच उसके सामने आता है। बचपन में उसकी हिन्दी टीचर जनक दीदी उसे बहुत अच्छी लगती थीं। वह बहुत ख़ूबसूरत थीं, गला भी सुरीला था और सब बच्चे उन्हें बहुत पसन्द करते थे। सौम्या का वह कुछ ख़ास ख़याल रखती थीं। ब्रोंकाइटिस की बीमारी से उनकी जान चली गई थी। अपनी ससुराल की किताबों की अलमारी में उसे जनक दीदी की एक किताब मिलती है जो उसके पति की बुआ लगती हैं, यह उसे पता चलता है।

आज प्रत्येक विधवा की समस्या भिन्न-भिन्न है। कहीं धार्मिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक आधार पर बहिष्कृत किया जाता है और विधवा को समाज में सामाजिक ताने-बाने का शिकार होना पड़ता है। भारतीय समाज में व्याप्त विधवा समस्या, समाज में तिरस्कृत और पीड़ित विधवाओं की मजबूरियों की मर्मस्पर्शी कहानी है 'चार आने की खुशी'। विधवा का नाम बड़ा है। रूखा चेहरा, रूखे केश, मज़बूत काठी की महिला थी बड़ा। सारा परिवार हँसता-खेलता और वह बग़ल में एक छोटी-सी कुटिया में अपनी दुनिया समेटकर रहती थीं। उस कमरे के अंदर पुआल का बिछौना था जिसके ऊपर छोटा-मोटा लेदरा जो फटे-पुराने कपड़ों से उन्होंने ख़ुद ही सी लिया था, बिछा रहता। दिन में अक्सर अँधेरा पसरा रहता। कोई खिड़की नहीं थी। रात में एक ढिबरी जलती जैसे अँधेरे कमरे में उजाला होता। उनके खाने के बर्तन भी अलग थे। एक स्टील की थाली और दो गिलास। एक गिलास से पानी पीतीं और दूसरी से चाय। इस चाय के शौक को पूरा करने के लिए ही वह अपने घर के पेड़ से शरीफ़े चार आने में बेचा करती थीं।

समलैंगिकता कोई विकार या बीमारी नहीं है, जिसके लिए मनोवैज्ञानिक उपचार की ज़रूरत हो। मनोवैज्ञानिक इसे कभी मानसिक समस्या नहीं मानते। यह यौन प्रवृत्ति है जो पूरी तरह जैविक है। यह विपरीत लिंगी लोगों के साथ सम्बन्धों की तरह ही मानवीय यौन प्रवृत्ति का एक स्वरूप है लेकिन सभी समलैंगिकों के सामने यह एक आम समस्या होती है, और इस बात

को समझा जा सकता है कि माता-पिता के लिए इस बात को स्वीकार करना मुश्किल होता है कि उनका बेटा/बेटी समलैंगिक रिश्ते में है। भारत में समलैंगिक रिश्तों को खुले दिल से स्वीकार नहीं किया जाता है। ऐसे में कई समलैंगिकों के सामने यह सवाल खड़ा होता है कि वे अपने रिश्ते के बारे में अपने माता-पिता को कैसे बताएँ। इसी उलझन से भरी कहानी है 'बन्द कोठरी का दरवाज़ा'। कि कहानी की पढ़ी-लिखी नायिका नसरीन का पति समलैंगिक है। उसका परिवार यह मानने को तैयार नहीं है कि इस आधार पर नसरीन को तलाक़ मिलना चाहिए।

रसोईघर में कलछी चलाती नसरीन के कानों में डॉक्टर रूबीना के शब्द एक बार फिर से बहुत साफ़-साफ़ सुनाई पड़ रहे हैं... आपके सामने दो ही रास्ते हैं—या तो आप यथास्थिति को स्वीकार कर उनके साथ ऐसे ही रहिए या फिर अपना रास्ता अलग कर लीजिए। बेवजह की उम्मीद मत पालिए।

अपने चश्मे के काँच को आँचल से साफ़ करने के बाद कोर्ट के फ़ैसले पर बड़बड़ाती सलमा आपा ने अख़बार का पन्ना पलट दिया था। गैस का नॉब ऑफ़ करते हुए नसरीन ने सोचा—सलमा आपा जो भी कहें, सरकार ने धारा 377 में बदलाव लाकर उसके लिए मुक्ति का द्वार खोल दिया है। क़ानूनन अपराध नहीं है, रेहान और सज्जाद का रिश्ता। रेहान जैसा है, वह वैसा ही रहे...लेकिन, माशरे से छुपकर कितने दिन ऐसे गुज़ार सकता है कोई? उसे हिम्मत करनी होगी। रेहान की झूठी शान और आबरू की ख़ातिर वह भी अब ख़ुद से और नहीं लड़ेगी।

उसने तय किया अब उसे अपने लिए जीना है... इस सोच ने मुस्कुराहट ला दी नसरीन के चेहरे पर। बन्द कोठरी के दरवाज़े खोलने को बेताब नसरीन की उँगलियों में एक नई जुंबिश-सी हुई। उसने सोचा... ज़िन्दगी इतनी भी बुरी नहीं।

रश्मि शर्मा में जीवन के यथार्थ का एक विशेष, मौलिक और ठोस नज़रिया है और उन्हें अभिव्यक्त करने का एक समर्थ शिल्प कौशल भी इनमें मौजूद है। यही कारण है कि इस संग्रह की कहानियों में जीवन की विविधता और उनकी ठोस पृष्ठभूमि मौजूद है। कहानियों में जीवन के वो सभी चित्र, दृश्य, स्मृतियाँ और अनुभव दर्ज हैं जो मानव के अंतर्मन में कहीं गहरे छुपे हुए होते हैं और मुक्ति की तलाश में होते हैं।

संग्रह की सभी कहानियाँ रोचक हैं और इनमें सतत प्रवाह है। हर कहानी की कथावस्तु का आधार मौलिक है। कहानियों में प्रेम, वैराग्य, सुख-दुख, पारिवारिक सम्बन्धों से लेकर पितृसत्ता के शोषण, यौन हिंसा, अंधविश्वास की कुरीतियों, विस्थापन की त्रासदी में अभाव से जूझते कोयला-मज़दूर वर्ग, सम्पत्ति में बेटी के उत्तराधिकार और समलैंगिकता के आधुनिक विमर्श के सभी आयाम और मानवीय-सामाजिक प्रश्न शामिल हैं।

लेखिका ने अपनी अनुभूतियों और कल्पनाशीलता के आधार पर कहानियों की बुनावट बड़ी तल्लीनता से की है। इसमें लेखिका की परिपक्वता की झलक मिलती है। ❑

(कृति : 'बन्द कोठरी का दरवाज़ा' (कहानी-संग्रह); लेखिका : रश्मि शर्मा; प्रकाशक : सेतु प्रकाशन, सी- 2 1, सेक्टर - 65, नोएडा (उत्तर प्रदेश); मूल्य : 200 रुपये)

● पुस्तक परिचय

साहित्य के नामवर



प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

पृष्ठ : 290

मूल्य : 355 रुपये

किसी साहित्यिक व्यक्तित्व को क़लमबद्ध करना सरल नहीं होता, उसके जीवन और रचनाकर्म की पूरी गवेषणा और विवेचना बहुत आवश्यक हो जाती है, कुछ भी काग़ज़ पर उतारने से पहले फिर भी लिखने वाले को हमेशा ये रंज रह जाता है कि कुछ छूट गया। प्रकाशन विभाग ने ऐसे व्यक्तित्वों पर अपने प्रकाशन की कड़ी में नामवर सिंह पर 'साहित्य के नामवर' पुस्तक प्रकाशित की है। नामवर सिंह अपने जीवनकाल में ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, नन्द दुलारे वाजपेयी, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी आदि आलोचकों की श्रेणी में सर्वमान्य रूप से प्रतिष्ठित हो गए थे। कारण था उनका पठनशील स्वभाव, विश्लेषण क्षमता और विचारों को तर्कपूर्ण तरीक़े से प्रस्तुत करने की कला। उनको जानने-समझने वालों की दृष्टि में नामवर सिंह स्वयं में आलोचना का एक पूरा युग थे। शुरुआत के वर्षों में उनकी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, कालांतर में वे लिखित से ज़्यादा वाचन-उन्मुख हो गए जिससे शोधार्थियों और शिक्षार्थियों को अपने कार्यों हेतु उनके वक्तव्यों, साक्षात्कारों, कविताओं आदि का अवलम्बन लेना सीखना पड़ा। फ़रवरी 2019 में उनका परलोक गमन हुआ जिसके उपरांत उन पर और उनके कार्यों पर साहित्यकर्मियों का ध्यान अधिक केन्द्रित हुआ। यह पुस्तक विभाग की 'आजकल' पत्रिका में प्रकाशित एवं अन्य लेखकों द्वारा नामवर सिंह पर लिखे गए लेखों व संस्मरणों का संकलन है, जो उनकी साहित्यिक समझ और पहुँच पर एक गहन अंतरदृष्टि देगी।

पुस्तक में दो खंड हैं, पहला जिसमें नामवरजी पर साहित्यिकों के 25 लेख हैं। इनमें विश्वनाथ त्रिपाठी, भारत यायावर, महेश दर्पण, जीवन सिंह, पल्लवी प्रकाश, कर्मेंदु शिशिर, पल्लव आदि के लेख शामिल हैं और दूसरे खंड में स्वयं नामवरजी द्वारा लिखे लेख संकलित हैं यथा 'दूसरी परम्परा की खोज', 'नई कविता की भाषा', 'बाबा की ऐसी तैसी' एवं 'आज के कलमघोंटू गद्य'।

कर्मेंदु शिशिर के अनुसार नामवरजी किसी भी रचना के मर्म को बड़ी आसानी से पकड़ लेते थे। बहस आदि में अतीव संयम और ठोस तर्कों से प्रतिपक्ष को चुप करा देते। बोलते समय एक भी तर्क नहीं छूटता था उनसे और बात का विवेचन ऐसे स्पष्ट कि प्रतिपक्षी को बोलने को कुछ बचे ही नहीं। उनका मानना था कि किसी रचना में उसके विषयवस्तु पर विशेष बल देना एकदम उचित है। शंभू गुप्त के अनुसार प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय जेएनयू के आचार्य और अध्यक्ष होने के बावजूद नामवर सिंह अपने गुरु हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की तरह ही स्वयं को साहित्य का विद्यार्थी मानते थे, जिसका प्रतिफल है उनके व्यक्तित्व की गम्भीरता और तर्कों की प्रमाणिकता। उनका आग्रह था कि साहित्यकर्मियों को समाज-निरपेक्षता का त्याग करना चाहिए क्योंकि साहित्य और समाज के बीच का अंतर्सम्बन्ध नकारा नहीं जा सकता, ठीक वैसे ही जैसे दाल और पानी एक-दूसरे से पृथक नहीं किए जा सकते स्वयं प्रकाश कहते हैं कि नामवर सिंह विलक्षण स्मरणशक्ति के धारक थे। उन्हें दिन, स्थान, समय, व्यक्ति और उसकी कही हुई बात ऐसे याद रहती जैसे कि अभी कल की ही बात हो परन्तु इसमें भी वे इसका ध्यान रखते थे कि याद रखने लायक़ ही रखा गया हो और भूल जाने लायक़ को जाने दिया गया हो। साथ ही वे एक अद्‌भुत अध्यापक थे और अभिभावक के समान अपने शिष्यों के हित-अनहित का ध्यान रखते थे जिसके मूल में है उनका स्वयं एक अनोखा शिष्य होना। उनके पढ़ने के कमरे में उनके गुरु आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का मुस्कुराता हुआ चित्र इस बात का प्रमाण है। पुनः नामवरजी एक अद्वितीय वक्ता हैं, और उनके शब्द चयन बहुत सटीक होते हैं, ऐसे कि सुनने वाले को आनन्द आ जाता है। उनके व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू है उनमें परिलक्षित साधुता और परिपक्वता। हर किसी का यथोचित सम्मान और सबको अच्छा महसूस कराना। अन्य साहित्यिकों से इतर नामवरजी भेंट की गई अथवा प्राप्त पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का समुचित अध्ययन और मनन करते थे और अनेक मौक़ों पर ऐसे बोलते थे मानो वह रचना उनकी अपनी है। ऐसी पकड़ थी उनकी भाषा और रचना के मर्म पर। रचना के मर्म पर उन्होंने स्वयं कहा है कि मर्म अर्थात उस कृति की वैल्यू याकि वैल्यू ऑफ़ लाइफ! यही वास्तविक मूल्यांकन है। देखा जाए तो यह पुस्तक नामवर सिंह पर बहुत कुछ कहते हुए नामवर सिंह को समझने का, नामवर समग्र बनने का एक सुप्रयास है। ❑

(प्रस्तुति : **शुभ्रा सिंह**)

G20 भारत 2023 INDIA
वसुधैव कुटुंबकम
ONE EARTH · ONE FAMILY · ONE FUTURE

आज़ादी का अमृत महोत्सव



अब उपलब्ध

संकलन 2022

कुरुक्षेत्र (अंग्रेजी)



*कुरुक्षेत्र (अंग्रेजी) का छमाही संकलन (जुलाई से दिसंबर 2022) भी उपलब्ध है।
प्रत्येक छमाही संकलन का मूल्य 150 रुपये है।

जनवरी से दिसंबर 2022
मूल्य : ₹300/-*

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

संकलन ऑनलाइन खरीदने के लिए कृपया www.bharatkosh.gov.in पर जाएं।
ऑर्डर के लिए कृपया संपर्क करें : फोन : 011-24369699, ईमेल : businesswng@gmail.com
वेबसाइट : www.publicationsdivision.nic.in

/dpd_india @DPD_India /publicationsdivision

डाक तार पंजीयन सं. डी एल (एस)- 05/3222/2021-23 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली से पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डी एन)-49/2021-23
Magazine Post Regn. No. DL (DS) - 42/MP/2022-23-24 दिल्ली डाक आर एन आई 701/57
Licenced U (DN) - 49/2021-23 to post without pre-payment at RMS Delhi Delhi Postal RNI 701/57
● 10 फरवरी 2023 को प्रकाशित ● 21-22 फरवरी 2023 को डाक द्वारा जारी ● वार्षिक मूल्य : ₹ 230



प्रकाशक व मुद्रक : अनुपमा भटनागर, महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए एजुकेशनल स्टोर्स, ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.) से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित। सम्पादक : फरहत परवीन